

## आत्मकथा चार्ल्स डार्विन

अनुवाद - [सूरज प्रकाश](#)

### अनुक्रम

- [अध्याय 1](#)
- [अध्याय 2](#)
- [अध्याय 3](#)

### [अनुक्रम](#)

### अध्याय 1

### [आगे](#)

[मेरे पिता के आत्म कथ्यात्मक संस्मरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। ये संस्मरण उन्होंने अपने घर परिवार और अपने बच्चों के लिए लिखे थे, और उनके मन में कत्तई यह विचार नहीं था कि कभी इन्हें प्रकाशित भी कराया जायेगा। बहुत से लोगों को यह असम्भव लग रहा होगा, लेकिन जो लोग मेरे पिता को जानते थे, वे समझ जाएंगे कि यह न केवल सम्भव था, बल्कि स्वाभाविक भी था। उनकी आत्मकथा का शीर्षक था - मेरे मन और व्यक्तित्व विकास के संस्मरण। और ये वाली अन्तिम टिप्पणी दर्ज की गयी थी 3 अगस्त 1876 को, "मेरे जीवन का यह रेखाचित्र होपडेन में शायद 28 मई को शुरू हुआ और उसके बाद से मैंने लगभग प्रतिदिन दोपहर एक घण्टा लेखन किया।"

यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि यह आत्मकथा बहुत ही व्यक्तिगत और प्रगाढ़ सम्बन्धों को बताते हुए, अपने परिवार के लिए लिखी गयी थी, लिहाजा इसमें ऐसे अन्तरंग विवरण भी थे, जिन्हें प्रकाशित किया जाना उचित नहीं था। मैंने हटाए गए वर्णनों का जिक्र भी नहीं किया है। बहुत ही ज़रूरी होने पर ही क्रियापदों की चूक वगैरह को ठीक किया है, लेकिन इस तरह का बदलाव भी कम ही किया है - फ्रांसिस डार्विन]

एक जर्मन सम्पादक ने मुझे लिखा कि मैं अपने मन और व्यक्तित्व के विकास के बारे में लिखूँ। इसमें आत्मकथा का भी थोड़ा-सा पुट रहे। मैं इस विचार से ही रोमांचित हो गया। शायद यह मेरी संतानों या उनकी भी संतानों के कुछ काम आ जाए। मुझे पता है जब मैंने अपने दादाजी की आत्मकथा पढ़ी थी तो मुझे कैसा लगा था। उन्होंने जो सोचा और जो किया, तथा वे जो कुछ करते थे, वह सब पढ़ा तो लेकिन ये सब बहुत संक्षिप्त और नीरस-सा था। मैंने अपने बारे में जो कुछ लिखा है, वह इस तरह से लिखा है जैसे मैं नहीं बल्कि परलोक में मेरी आत्मा मेरे जीवन

और कृत्यों को देख देखकर लिख रही हो। मुझे इसमें कुछ भी मुश्किल नहीं आयी। अब तो जीवन बस ढलान की ओर बढ़ रहा है। लेखन शैली पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया है।

मेरा जन्म 12 फरवरी 1809 को श्रृजबेरी में हुआ था। मुझे सबसे पहली याद उस समय की है, जब मैं चार बरस से कुछ महीने ज्यादा की उम्र का था। हम लोग समुद्र तट पर सैर-सपाटे के लिए गए थे। कुछ घटनाएँ और स्थान अभी भी मेरे मन पर धुंधली-सी याद के रूप में हैं।

मैं अभी आठ बरस से कुछ ही बड़ा था कि जुलाई 1817 में मेरी माँ चल बसीं, और बड़ी अजीब बात है कि उनकी मृत्यु शैय्या, काले शनील से बने उनके गाउन, बड़े ही जतन से सहेजी सिलाई कढ़ाई की उनकी मेज के अलावा उनके बारे में मुझे कुछ भी याद नहीं।

उसी साल बसन्त ऋतु में मुझे श्रृजबेरी के एक डे स्कूल में दाखिल करा दिया गया। उसमें मैं एक बरस तक रहा। लोग-बाग मुझे बताते थे कि छोटी बहन कैथरीन के मुकाबले मैं पढ़ाई-लिखाई में एकदम फिसड़्डी था जबकि मैं तो मानता हूँ कि मैं काफी शरारती भी था।

इस स्कूल में जाने के समय तक प्राकृतिक इतिहास, और खास कर विभिन्न प्रकार की चीजों के संग्रह में मेरी रुचि बढ़ चुकी थी। मैं पौधों के नाम जानने की कोशिश करता, और शंख, बिल्लौरी पत्थर, सिक्के और धातुओं के टुकड़े बटोरता फिरता रहता। संग्रह करने का यह जुनून किसी भी व्यक्ति को सलीकेदार प्रकृतिवादी या कला पारखी ही नहीं, उसे कंजूस भी बनाता है। जो भी हो, यह जुनून मुझमें था, और यह सिर्फ मुझमें ही था, क्योंकि मेरे किसी भी भाई या बहन में इस तरह की रुचि नहीं थी।

इसी बीच एक छोटी-सी घटना मेरे जेहन पर पुख्ता लकीर छोड़ गयी। मेरा विचार है कि यह मेरे जेहन को बार बार परेशान भी कर देती थी। यह तो साफ ही था कि मैं अपने छुटपन में पौधों की विविधता में रुचि लेता था। मैंने अपने एक हम उम्र बच्चे (मैं यह पक्का कह सकता हूँ कि यह लेहटान था, जो आगे चलकर प्रसिद्ध शिलावल्क विज्ञानी और वनस्पति शास्त्री बना) को बताया कि मैं बहुपुष्पक और बसंत गुलाब को किसी खास रंग के पानी से सींचूंगा तो अलग ही किस्म के फूल लगेंगे। हालांकि यह बहुत बड़ी डींग हांकना था, लेकिन मैंने कभी इसके लिए कोशिश नहीं की थी। मैं यह मानने में संकोच नहीं करूँगा कि मैं बचपन में अलग ही तरह की कपोल कल्पनाएँ किया करता था, और ये सब महज एक उत्सुकता बनाए रखने के लिए करता था।

ऐसे ही एक बार मैंने अपने पिताजी के बाग में बेशकीमती फल बटोरे और झाड़ियों में छुपा दिए, और फिर हाँफता हुआ घर पहुँच गया और यह खबर फैला दी कि चुराए हुए फलों का एक ढेर मुझे झाड़ियों में मिला है।

मैं जब पहली बार स्कूल गया तो शायद बुद्ध किस्म का रहा होऊँगा। गारनेट नाम का एक लड़का एक दिन मुझे केक की दुकान पर ले गया। वहाँ उसने बिना पैसे दिए ही केक खरीदे, क्योंकि दुकानदार उसे जानता था। दुकान के बाहर निकलने के बाद मैंने उससे पूछा कि तुमने दुकानदार को पैसे क्यों नहीं दिए, तो वह फौरन बोला - इसलिए कि मेरे एक रिश्तेदार ने इस शहर को बहुत बड़ी रकम दान में दी थी, और यह शर्त रखी थी कि उनके पुराने हैट को पहनकर जो भी आए और किसी भी दुकान पर जाकर एक खास तरह से अपने सिर पर घुमाए तो इस शहर के उस दुकानदार को बिना पैसे माँगे सामान देना होगा।' इसके बाद उसने अपना हैट घुमाकर मुझे बताया। उसके बाद वह दूसरी दुकान में गया, वहाँ भी उसकी पहचान थी, उस दुकान में उसने कोई छोटा-सा सामान लिया, अपने हैट को उसी तरह से घुमाया और बिना पैसे दिए ही सामान लेकर बाहर आ गया। जब हम बाहर निकल आए तो वह बोला, 'देखो अब अगर तुम खुद केक वाले की दुकान में जाना चाहते हो (मुझे सही जगह याद कहाँ रहने वाली थी) तो मैं अपना हैट दे सकता हूँ, और अगर तुम इसे सही ढंग से सिर पर हिलाओगे तो जो कुछ चाहोगे, बिना दाम लिए ले सकोगे।' इस दयानतदारी को मैंने फौरन मान लिया और दुकान में जाकर कुछ केक लिए, उस पुराने हैट

को वैसे ही हिलाया जैसे बताया गया था, और ज्यों ही बाहर निकलने को हुआ, तो दुकानदार पैसे माँगते हुए मेरी तरफ लपका। मैंने केक को वहीं फेंका और जान बचाने के लिए सिर पर पैर रखकर भागा। जब मैं अपने धूर्त दोस्त गारनेट के पास पहुंचा तो उसे हँसते देखकर मैं चकित रह गया।

मैं अपने बचाव में कह सकता हूँ कि यह बाल सुलभ शरारत थी, लेकिन इस बात को शरारत मान लेने की सोच मेरी अपनी नहीं थी, बल्कि मेरी बहनों की हिदायतों और नसीहतों से मुझमें इस तरह की सोच पैदा हुई थी। मुझे संदेह है कि मानवता कोई प्राकृतिक या जन्मजात गुण हो सकती है। मुझे अण्डे बटोरने का शौक था, लेकिन किसी भी चिड़िया के घोंसले से मैं एक बार में एक ही अण्डा उठाता था, लेकिन एक बार मैं सारे ही अण्डे उठा लाया, इसलिए नहीं कि वे बेशकीमती थे, बल्कि महज अपनी बहादुरी जताने के लिए।

मुझे बंसी लेकर मछली मारने का बड़ा शौक था। किसी नदी या तालाब के किनारे मैं घन्टों बैठा रह सकता था और पानी की कल कल सुनता रहता था। मायेर में मुझे बताया गया कि अगर पानी में नमक डाल दिया जाए तो केंचुए मर जाते हैं, और उस दिन से मैंने कभी भी जिन्दा केंचुआ बंसी की कंटिया में नहीं लगाया। हालांकि, इससे परेशानी यह हुई कि मछलियाँ कम फंसती थीं।

एक घटना मुझे याद है। तब मैं शायद डे स्कूल में जाता था। अपने घर के पास ही मैंने बड़ी ही निर्दयता से एक पिल्ले को पीटा। इसलिए नहीं कि वह किसी को नुकसान पहुँचा रहा था बल्कि इसलिए कि मैं अपनी ताकत आजमा रहा था, लेकिन शायद मैंने उसे बहुत जोर से नहीं मारा था, क्योंकि वह पिल्ला ज़रा-भी किंकियाया नहीं था। यह घटना मेरे दिलो दिमाग पर बोझ-सी बनी रही, क्योंकि वह जगह मुझे अभी भी याद है, जहाँ मैंने यह गुनाह किया था। उसके बाद तो जब मैंने कुत्तों से प्यार करना शुरू कर दिया तो यह बोझ शायद और भी बढ़ता गया, और उसके बाद काफी समय तक यह एक जुनून की तरह रहा। लगता है कि कुत्ते भी इस बात को जान गए थे क्योंकि कुत्ते भी अपने मालिक को छोड़ मुझे ज्यादा चाहने लगते थे।

मिस्टर केस के डे स्कूल में जाने के दौरान हुई एक घटना और भी है जो मुझे अब तक याद है, और वह है एक ड्रैगून सिपाही को दफनाने का मौका। अभी तक वह मंज़र मेरी आँखों के सामने है कि कैसे घोड़े पर उस सिपाही के बूट रख दिए गए थे और कारबाइन को काठी से लटका दिया गया था, फिर कब्र पर गोलियाँ चलायी गयीं। भीतर उस समय जैसे किसी सोये हुए कवि की आत्मा जाग उठी थी। इतना प्रभाव पड़ा उस दृश्य का।

सन 1818 की ग्रीष्म ऋतु में मेरा दाखिला डॉक्टर बटलर के प्रसिद्ध स्कूल में करा दिया गया। यह स्कूल श्रृजबेरी में था और सन 1825 तक सात साल मैंने वहीं गुजारे। जब यह स्कूल मैंने छोड़ा तो मेरी उम्र सोलह बरस की थी। इस स्कूल में पढ़ाई के दौरान मैंने सही मायनों में स्कूली बच्चे का जीवन बिताया। यह स्कूल हमारे घर से बमुश्किल आधा मील दूर रहा होगा, इसलिए मैं हाजिरी के बीच खाली समय और रात में ताले बन्द होने से पहले स्कूल और घर के कई चक्कर लगा लेता था। मैं समझता हूँ कि घर के प्रति जुड़ाव और रुचि को बरकरार रखने में यह काफी मददगार रहा।

स्कूल के शुरुआती दिनों के बारे में मुझे याद है कि मुझे समय पर पहुँचने के लिए काफी तेज दौड़ना पड़ता था, और तेज धावक होने के कारण मैं अक्सर सफल ही होता था। लेकिन जब भी मुझे संदेह होता था तो अधीरता से ईश्वर से प्रार्थना करने लगता था, और मुझे याद है कि अपनी कामयाबी का श्रेय मैं हमेशा ईश्वर को देता था, अपने तेज दौड़ने को नहीं, और हैरान होता था कि प्रभु ने मेरी कितनी मदद की है।

मैंने कई बार अपने पिता और दीदी को यह कहते सुना कि जब मैं काफी छोटा था तो संन्यासियों की तरह डग भरता था, लेकिन मुझे ऐसा कुछ याद नहीं आता है। कई बार मैं अपने आप में खो जाता था। ऐसे ही एक बार स्कूल से लौटते समय शहर की पुरानी चहारदीवारी पर चहलकदमी करता हुआ आ रहा था। चहारदीवारी को लोगों

के चलने लायक तो बना दिया गया था, लेकिन अभी एक तरफ मुंडेर नहीं बनायी गयी थी। अचानक ही मेरा पैर फिसला और मैं सात आठ फुट की ऊँचाई से नीचे आ गिरा। इस दौरान मुझे एक विचित्र-सा अनुभव हुआ। अचानक और अप्रत्याशित रूप से गिरने और नीचे पहुँचने में बहुत ही थोड़ा समय लगा था, लेकिन इस थोड़े से समय के बीच ही मेरे दिमाग में इतने विचार कौंध गए कि मैं चकित रह गया, जबकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक विचार के लिए काफी समय लगता है, पर मुझे तो अलग ही अनुभव हुआ था, और मेरा ये अनुभव उनसे बिल्कुल ही अलग था।

डॉक्टर बटलर के स्कूल में मेरे दिमाग का जो विकास हुआ उससे बेकार और वाहियात घटना दूसरी नहीं हो सकती। यह स्कूल पूरी तरह से पुरातन पंथी था। प्राचीन भूगोल और इतिहास को छोड़ कर कुछ भी नहीं पढ़ाया जाता था। स्कूली तालीम के रूप में मेरे पास शून्य था। अपने पूरे जीवन काल में मैं किसी भी भाषा में महारथ हासिल नहीं कर पाया। कविता करने पर खास तौर से ज़ोर दिया जाता था, और इसमें भी मैं कोई तीर नहीं मार सका था। मेरे बहुत से दोस्त थे, और सबके पास देखें तो कुल मिला कर तुकबन्दियों का अच्छा संग्रह हो जाता था। बस, इन्हीं तुकबन्दियों में जोड़ तोड़ करके, और दूसरे लड़कों की मदद से मैं भी इस विषय में थोड़ा बहुत हाथ साफ कर लेता था। स्कूल में ज्यादा ज़ोर इस बात पर दिया जाता था कि कल जो कुछ पढ़ा था उसे अच्छी तरह से घोंट कर याद कर लो, और यह काम मैं बखूबी कर लेता था। सुबह चैपल में ही मैं होमर या वर्जिल की चालीस पचास पंक्तियाँ याद कर लेता था। लेकिन यह कवायद भी एकदम बेकार थी, क्योंकि प्रत्येक पद्य महज अड़तालीस घण्टे में बिसर जाता था। मैं आलसी नहीं था, और पद्य रचना को छोड़ दें तो मैं शास्त्रीय पठन में निष्ठापूर्वक मेहनत करता था, सिर्फ़ तोता रटत नहीं करता था। मुझे होरेस के मुक्तक बहुत पसन्द थे, और इस प्रकार के काव्य अध्ययन का एकमात्र आनन्द मुझे होरेस में ही मिला।

जब मैंने स्कूल छोड़ा तो मैं अपनी उम्र के मुताबिक न तो बहुत मेधावी था और न ही एकदम निखटू, लेकिन मेरे सभी मास्टर और मेरे पिता मुझे बहुत ही सामान्य लड़का समझते थे, बल्कि बुद्धिमानी में सामान्य पैमाने से भी नीचे ही मानते थे। एक बार पिताजी ने मुझसे कहा, 'बन्दूक चलाने, कुत्तों और चूहों को पकड़ने के अलावा तुम्हें किसी काम की परवाह नहीं है। तुम खुद के लिए और सारे परिवार के लिए एक कलंक हो।' यह सुनकर मैं बहुत ही खिन्न हो गया। मैं एक बात और भी कहूँगा कि मेरे पिता बहुत ही दयालु थे, और उनकी याददाश्त का तो मैं कायल हूँ। शायद उस दिन वे बहुत ही गुस्से में थे, जो ऐसे कठोर शब्द उन्होंने मुझसे कहे।

स्कूली जीवन के दौरान अपने व्यक्तित्व निर्माण पर नज़र डालते हुए मैं कह सकता हूँ कि इस दौरान मुझमें कुछ ऐसे गुणों का भी विकास हो रहा था जो भविष्य की आधारशिला थे, जैसे कि मेरी रुचियाँ विविधतापूर्ण थीं। जिस चीज़ में मेरी रुचि होती थी उसके प्रति मैं उत्साह से भर जाता था, और किसी भी जटिल विषय या चीज़ को समझने में मुझे बहुत आनन्द आता था। मुझे यूक्लिड पढ़ाने के लिए एक प्राइवेट ट्यूटर आते थे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि रेखागणित के प्रमेय सिद्ध करने में मुझे बहुत आनन्द आता था। इसी तरह मुझे यह भी याद है कि जब मुझे अंकल (फ्रांसिस गेल्टन के पिता) ने बैरोमीटर के वर्नियर सिद्धान्त समझाए तो मैं कितना खुश हुआ था। विज्ञान के अलावा मेरी रुचि अलग अलग किताबों में भी थी। शेक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटक लिये मैं स्कूल की मोटी दीवार में बनी खिड़की में बैठकर घन्टों पढ़ता रहता था। यही नहीं, मैं थामसन की 'सीजन' और बायरन तथा स्कॉट की कविताओं का भी आनन्द लेता था। मैंने कविताओं का ज़िक्र इसलिए किया कि आगे चल कर शेक्सपीयर सहित सभी प्रकार के काव्य में मेरी रुचि खत्म हो गई। मुझे इस बात का दुख भी है।

काव्य से मिलने वाले आनन्द के बारे में एक घटना और बताता हूँ कि 1882 में वेल्स की सीमाओं पर हम घुड़सवारी करते हुए सैर कर रहे थे और दृश्यों में जो जीवन्त रंग काव्य ने भरा था वह मेरे मन पर किसी भी अन्य

सौन्दर्यपरक आनन्द की तुलना में कहीं अधिक समय तक बना रहा।

स्कूली जीवन के शुरुआती दौर की ही बात है, एक लड़के के पास 'वण्डर्स ऑफ दि वर्ल्ड' नामक किताब थी। मैं अक्सर वह किताब पढ़ता था और उसमें लिखी हुई कई बातों की सच्चाई के बारे में दूसरे लड़कों के साथ बहस भी करता था। मैं यह मानता हूँ कि यही किताब पढ़ कर मेरे मन में दूर दराज के देशों की यात्रा करने का विचार आया, और यह विचार तब पूरा हुआ जब मैंने बीगल से समुद्री यात्रा की।

स्कूली जीवन के बाद के दौर में मुझे निशानेबाजी का शौक रहा। मुझे नहीं लगता कि जितना उत्साह मुझे चिड़ियों के शिकार का रहता था, उतना कोई और किसी बड़े से बड़े धार्मिक कार्य में भी क्या दिखाता रहा होगा। मुझे अच्छी तरह से याद है कि जब मैंने कुनाल पक्षी का शिकार किया, तो मैं इतना उत्तेजित हो गया था कि मेरे हाथ काँपने लगे और बन्दूक में दूसरी गोली भरना मेरे लिए मुश्किल हो गया। यह शौक काफी समय तक बना रहा और मैं अच्छा खासा निशानेबाज बन गया। कैम्ब्रिज में पढ़ने के दौरान मैं आइने के सामने खड़ा होकर बन्दूक को झटके से कन्धे पर रखने की कवायद करता था, ताकि बन्दूक कन्धे पर एकदम सीधी रहा करे।

एक और भी खेल मैं किया करता था कि अपने किसी दोस्त को कह देता था कि वह मोमबत्ती जलाकर पकड़े, और फिर बन्दूक की नली पर डाट लगाकर गोली चलाता था, अगर निशाना सही होता था तो हवा के दबाव से छोटा-सा धमाका होता और नली पर लगी डाट से तीखा पटाखा बोलता था। मेरे एक ट्यूटर ने इस अजीब-सी घटना का जिक्र किया था कि लगता है मिस्टर डार्विन घंटों अपने कमरे में खड़े होकर चाबुक फटकारते रहते हैं, क्योंकि मैं जब भी इनके कमरे की खिड़की के नीचे से गुजरता हूँ तो चटाक चटाक की आवाज़ आती रहती है।

स्कूली लड़कों में मेरे बहुत से दोस्त थे, जिन्हें मैं बहुत चाहता था, और मुझे लगता है कि उस समय मेरा स्वभाव बहुत ही स्नेही था।

विज्ञान में मेरी रुचि बरकरार थी, मैं अब भी उसी उत्साह से खनिज बटोरता रहता था, लेकिन बड़े ही अवैज्ञानिक तरीके से। मैं सिर्फ इतना ही देखता था कि कोई नया खनिज है, तो रख लिया, लेकिन इनके वर्गीकरण की सावधानी मैं नहीं बरतता था। कीट पतंगों पर मैं तब से ही ध्यान देने लगा था, जब मैं दस बरस (1819) का था। मैं वेल्स के समुद्रतट पर स्थित प्लास एडवर्ड्स गया था। वहाँ पर मैं काले और सिन्दूरी रंग के बड़े हेमिप्टेरस कीट, और जायगोनिया तथा सिसिन्डेला जैसे शलभ देखकर चकित रह गया। ये कीट श्रापशायर में दिखाई नहीं देते थे। मैंने फौरन ही अपना मन बना लिया कि जितने भी मरे हुए कीट बटोर सकूँगा, बटोरूँगा। मरे हुए कीट बटोरना मैंने इसलिए तय किया था क्योंकि मेरी बहन ने बताया था कि महज संग्रह के लिए कीटों को मारना ठीक नहीं। वाइट लिखित सेलबोर्न पढ़ने के बाद मैं पक्षियों की आदतों पर ध्यान देने लगा और इस बारे में खास खास बातों को लिखने भी लग गया। बड़े ही सामान्य भाव से मैं यह भी आश्चर्य करता था कि हर कोई पक्षी विज्ञानी क्यों नहीं बन जाता है।

मेरा स्कूली जीवन समापन की ओर था। इस बीच मेरे भाई रसायन विज्ञान में काफी मेहनत कर रहे थे। घर के बाग में बने टूलरूम को उन्होंने एक अच्छी खासी प्रयोगशाला में बदल दिया था। वहाँ पर तरह तरह के उपकरण जुटा लिए थे, और ज्यादातर प्रयोगों में मुझे उनके सहायक के तौर पर मदद की इजाज़त मिल गयी थी। उन्होंने सभी गैसों तैयार कर ली थीं और कई एक यौगिक रसायन भी बना लिए थे। मैंने भी रसायन पर कई किताबें पढ़ ली थीं, इनमें सबसे पसन्दीदा किताब थी, हेनरी और पाक्स की कैमिकल कैटेकिस्म। इस विषय में मेरा मन बहुत रम रहा था, और हम दोनों भाई देर रात तक काम में जुटे रहते थे। स्कूली शिक्षा के दौरान यह समय मेरे जीवन का सर्वाधिक काल था, क्योंकि इसी दौरान मैंने प्रयोगात्मक विज्ञान को व्यावहारिक रूप में समझा। हम दोनों मिलकर रसायनों पर प्रयोग करते हैं, यह बात न जाने कैसे स्कूल में फैल गयी। इस तरह का काम स्कूली लड़कों

ने पहले कभी नहीं किया था, इसलिए सबने इसका मज़ाक उड़ाया और इसे नाम दिया - गैस। डॉक्टर बटलर हमारे हेडमास्टर थे। एक बार उन्होंने भी सभी के सामने मेरा अपमान करते हुए कहा कि मैं ऐसे वाहियात किस्म के विषयों पर अपना समय बर्बाद कर रहा हूँ। उन्होंने सबके सामने बेवजह ही मुझे एकान्तवासी संन्यासी कहा, उस समय तो मुझे इसका मतलब समझ नहीं आया लेकिन इतना तो मैं जान ही गया था कि कुछ कड़वी बात कही गयी है।

यह देखते हुए कि मैं स्कूल में कुछ खास नहीं कर पा रहा हूँ, मेरे पिता ने समझदारी दिखाते हुए मुझे कुछ पहले ही स्कूल से उठवा लिया और मुझे भाई के साथ (अक्टूबर 1825) एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी भेज दिया, जहाँ पर मैं दो बरस तक रहा।

मेरे भाई अपनी डाक्टरी की पढ़ाई पूरी कर रहे थे। हालांकि मैं जानता था कि डाक्टरी की प्रैक्टिस करने का उनका कोई इरादा नहीं था, और पिताजी ने मुझे इसलिए भेजा था कि मैं भी डाक्टरी की पढ़ाई शुरू कर सकूँ। इसी दौरान मुझे कुछेक छोटी मोटी घटनाओं से यह पता चल चुका था कि मेरे पिताजी मेरे लिए इतनी जायदाद छोड़ जाएँगे कि मैं आराम से ज़िन्दगी बसर कर सकूँ। हालांकि मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मैं इतना धनवान हूँ, लेकिन जब मुझे अपनी हैसियत का पता चला तो इतना ज़रूर हुआ कि डाक्टरी पढ़ने की मेहनत के रास्ते में रुकावट आ गयी।

एडिनबर्ग में सारी शिक्षा लैक्चरों के जरिए दी जाती थी। लेकिन ये लैक्चर इतने उबाऊ और नीरस होते थे कि बस, पूछो मत। इनमें अगर कुछ अपवाद था तो रसायनशास्त्र के बारे में होप के लैक्चर। इस सबके बावजूद मेरे विचार से पढ़ने की तुलना में लैक्चरों से लाभ तो कुछ नहीं होता था, उल्टे इनके साथ हानियाँ कई एक जुड़ी हुई थीं। सर्दियों में सवेरे ठीक आठ बजे डॉक्टर डन्कन द्वारा मैटेरिया मेडिका पर दिए जाने वाले लैक्चरों की याद आज भी तन को झकझोर देती है। डॉक्टर मुनरो मानव शरीर शास्त्र पर उतने ही नीरस लैक्चर देते थे, जितने नीरस वे खुद थे, और यह विषय मुझे वैसे भी कोफ्त भरा लगता था। मेरे जीवन में यह तो एक बड़ी दुर्घटना के रूप में तो है ही कि मैं चीर-फाड़ की कला नहीं सीख पाया। यदि सीख लेता तो न केवल अपनी झुंझलाहट से बच जाता, बल्कि यह अभ्यास भविष्य में मेरी काफी मदद करता। इस कमी की तो भरपाई कभी भी नहीं हो पायी।

मुझमें एक और कमी भी थी कि मैं ड्राइंग भी नहीं बना पाता था। मैं अस्पताल में क्लीनिकल वार्ड में नियमित रूप से जाता था। कुछ मामले तो ऐसे थे जिन्हें देखकर मैं व्याकुल हो जाता था। कुछ तो ऐसे हैं जो आज भी मेरे दिलो-दिमाग पर गहराई से छाए हुए हैं, लेकिन इन सबसे विचलित होकर मैंने कक्षाओं में अपनी हाजिरी कम नहीं होने दी। मुझे अभी भी यह समझ में नहीं आया है कि इस विषय की शिक्षा प्राप्त करने में मुझे रोचकता का अनुभव क्यों नहीं हुआ, क्योंकि एडिनबर्ग आने से पहले गर्मियों के दौरान श्रूजबेरी में मैंने कुछ गरीब लोगों का इलाज किया था, खासकर औरतों और बच्चों का। सभी रोगियों के मामलों में मैंने उनके सभी लक्षणों को विस्तारपूर्वक लिखा, फिर ये सभी पिताजी को सुनाए, उन्होंने कुछ और बातें भी पूछने के लिए कहा और मुझे दवाओं के बारे में भी बताया। ये दवाएं भी मैंने खुद ही तैयार कीं। एक बार मैं मेरे पास तकरीबन एक दर्जन बीमार आते थे और मुझे इस काम में काफी रुचि भी थी।

मैं जितने भी लोगों को जानता हूँ, उनमें मेरे पिताजी ही ऐसे थे जो व्यक्तित्व के गहरे रखी थे, और उन्होंने मेरे लिए एक दिन कहा था कि मैं एक सफल डाक्टर बन सकता हूँ, इसका मतलब तो बस यही होता था, ऐसा व्यक्ति जिसके पास ढेर सारे मरीज आएँ। दूसरी ओर वे यह भी मानते थे कि सफलता का मुख्य तत्त्व है, आत्मविश्वास; लेकिन मेरी जिस बात ने उन्हें प्रभावित किया था वह यह कि मैं जो कुछ नहीं भी जानता था उस बात के प्रति भी अपने मन में आत्मविश्वास पैदा कर लेता था। मैं एडिनबर्ग में दो बार ऑपरेशन थिएटर में भी गया, और बहुत ही

दर्दनाक ढंग से किए जा रहे दो ऑपरेशन भी देखे। इनमें से एक ऑपरेशन तो किसी बच्चे का था, लेकिन ऑपरेशन पूरा होने से पहले ही मैं बाहर निकल आया। इसके बाद मैं कभी भी ऑपरेशन कक्ष में नहीं गया। यहाँ यह भी बता दूँ कि उन दिनों क्लोरोफार्म का उपयोग नहीं किया जाता था, इसलिए दोनों ही ऑपरेशन देखकर दिल दहल गया था। मन में एक बलवती इच्छा तो थी कि एक बार मैं फिर ऑपरेशन देखने जाऊँ, लेकिन कभी नहीं गया। लेकिन दोनों ऑपरेशनों के दृश्य मुझे काफी दिनों तक विचलित करते रहे।

मेरे भाई यूनिवर्सिटी में सिर्फ एक साल ही मेरे साथ रहे। दूसरे बरस तो सारे इन्तज़ाम मुझे खुद ही करने पड़े, और यह एक तरह से अच्छा भी रहा, क्योंकि इसी दौरान मैं ऐसे युवकों के सानिध्य में आया जो प्राकृतिक विज्ञान में रुचि रखते थे। इन्हीं युवाओं में एक थे, एन्सवर्थ, बाद में इन्होंने असीरिया की यात्रा का वृत्तांत भी प्रकाशित कराया। ये सज्जन वर्नेरियन भूविज्ञानी थे, और बहुत से विषयों की थोड़ी बहुत जानकारी रखते थे। डॉक्टर कोल्डस्ट्रीम एक अलग ही तरह के नवयुवक थे। बड़े ही विनम्र और नफासत पसन्द, बहुत ही धार्मिक और दयालु; बाद में इन्होंने प्राणिशास्त्र में कई बेहतरीन लेख प्रकाशित कराए। मेरा एक और युवा साथी था, हार्डी, आगे चलकर वह वनस्पति शास्त्री बना, लेकिन भारत प्रवास के दौरान बहुत कम उम्र में ही उसकी मृत्यु हो गयी थी।

मेरे आखिरी दोस्त थे डॉक्टर ग्रान्ट। वैसे तो वे मुझसे कई बरस वरिष्ठ थे; उनके साथ मेरी घनिष्ठता कैसे हुई, मुझे नहीं मालूम। उन्होंने प्राणिशास्त्र में अतिश्रेष्ठ लेख प्रकाशित कराए थे, लेकिन यूनिवर्सिटी कॉलेज में प्रोफेसर के रूप में लन्दन आने के बाद उन्होंने विज्ञान में कुछ खास नहीं किया। यह बात ऐसी थी, जिसे मैं कभी समझ नहीं पाया। मैं उन्हें अच्छी तरह से जानता था। उनका व्यवहार बड़ा ही नीरस और औपचारिक था, लेकिन इस बाहरी खोल के भीतर निहायत ही नेक दिल और उत्साही व्यक्ति छिपा हुआ था। एक दिन हम लोग साथ-साथ घूम रहे थे कि अचानक ही उन्होंने उद् विकास के बारे में लैमारेक के दृष्टिकोणों पर अपने विचार प्रकट करने शुरू कर दिए। मैं चकित होकर मूक श्रोता बना रहा, लेकिन जहाँ तक मेरा ख्याल है, मुझ पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इससे पहले मैंने अपने दादाजी की जूनोमिया पढ़ी थी। उसमें भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए गए थे और उनका भी मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। इसके बावजूद यह भी सम्भावना है कि जीवन के आरम्भ में ही इस प्रकार की विचारधारा को स्वीकार करता और उसकी प्रशंसा करता तो जिस प्रकार से उन्होंने विचारों को मैंने ओरिजिन ऑफ स्पेशीज़ में लिखा है, शायद उनका रूप कुछ और ही होता। इस समय मैं जूनोमिया की काफी प्रशंसा करता हूँ, लेकिन दस या पन्द्रह वर्ष के अन्तराल के बाद दोबारा वही किताब पढ़ कर मैं काफी असन्तुष्ट रहा। तथ्यों और परिकल्पनाओं में बहुत ही अन्तर दिखाई दिया।

डॉक्टर ग्रान्ट और डॉक्टर कोल्डस्ट्रीम, दोनों ही मैरीन जूलॉजी पर अधिक ध्यान देते थे। मैं भी यदा कदा डॉक्टर ग्रान्ट के साथ समुद्र किनारे चला जाता था और समुद्र में ज्वार के बाद किनारे रुके हुए पानी में जीव पकड़ता था। बाद में इन जीवों की मैं चीर-फाड़ भी करता था। न्यू हैवेन के बहुत से मछुआरों से मेरी दोस्ती हो गयी थी। जब वे सीपियाँ पकड़ने जाते तो मैं भी कई बार उनके साथ हो लेता था। इस तरह से मैंने कई नमूने एकत्र कर लिए थे। अब चीर-फाड़ का मुझे अधिक ज्ञान और अभ्यास भी नहीं था और मेरा सूक्ष्मदर्शी यंत्र भी बस कामचलाऊ ही था। इन सब बाधाओं के कारण मैं इस दिशा में ज्यादा कुछ नहीं कर पाया।

इस सबके बावजूद मैंने छोटा किन्तु रोचक अन्वेषण किया और प्लिनियन सोसायटी के समक्ष एक छोटा-सा लेख भी पढ़ा। यह लेख फ्लस्ट्रा के डिम्बों के बारे में था। इसमें मैंने बताया था कि सिलिया के माध्यम से इसमें स्वतंत्र गति होती है, लेकिन बाद में पता चला कि वास्तव में ये लारवे थे। एक और लेख में मैंने दर्शाया था कि छोटे छोटे गोलाकार जीव, जिन्हें फ्यूकस लोरेस की आरम्भिक अवस्था कहा जाता है, वस्तुतः पोन्टोबडेला म्यूरीकेटा जैसे कृमियों के अण्डों का खोल थे।

मेरी जानकारी के मुताबिक प्लिनियन सोसायटी की स्थापना प्रोफेसर जेम्सन ने की थी और वही इसके प्रेरक भी थे, इस सोसायटी में कई छात्र भी शामिल थे और प्राकृत विज्ञान के बारे में लेख पढ़ने और विचार विमर्श के लिए यूनिवर्सिटी के एक तहखाने में इसकी बैठकें होती रहती थीं। मैं इनमें नियमित रूप से शामिल होता था, और मेरे उत्साह को बढ़ाने तथा मुझे नए किस्म की अंदरूनी नज़दीकी प्रदान करने में इन बैठकों का काफी योगदान रहा। एक शाम की बात है, एक बेचारा युवक बोलने के लिए खड़ा हुआ किन्तु बहुत देर तक हकलाता रहा। वह भयातुर हो पीला पड़ गया। अन्त में वह किसी तरह बोला, 'माननीय अध्यक्ष महोदय, मैं जो कुछ कहना चाहता था, वह सब भूल गया हूँ।' वह बेचारा पूरी तरह से भयभीत लग रहा था। सभी सदस्य हैरान, कोई भी यह समझ नहीं पा रहा था कि उस बेचारे की बौखलाहट पर क्या कहा जाए? हमारी सोसायटी में जो लेख पढ़े जाते थे वे मुद्रित नहीं होते थे, इसलिए मुझे अपने लेखों को मुद्रित रूप में देख पाने का सौभाग्य नहीं मिला, लेकिन मुझे मालूम है कि डॉक्टर ग्रान्ट ने मेरी छोटी-सी खोज को फ्लास्ट्रा पर अपने अनुसंधान लेख में स्थान दिया था।

मैं रॉयल मेडिकल सोसायटी का भी सदस्य था, और इसमें भी नियमित रूप से शामिल होता था। इसके सभी विषय पूरी तरह से मेडिकल से जुड़े थे, इसलिए मेरी रुचि अधिक नहीं रही। यहाँ तो सब ऊल-जलूल ही बातें होती थीं, लेकिन इसमें कुछ अच्छे वक्ता भी थे। इनमें सर जे के शटलवर्थ सर्वोत्तम थे। डॉक्टर ग्रान्ट मुझे यदा कदा वर्नेरियन सोसायटी की सभाओं में भी ले जाते थे। वहाँ प्राकृतिक इतिहास पर विभिन्न आलेखों का वाचन किया जाता था, विचार विमर्श होता और फिर उन्हें ट्रान्जक्शन्स में प्रकाशित किया जाता था। मैंने सुना था कि ऑडोबान ने दक्षिण अमरीकी पक्षियों की आदतों पर रोचक आख्यान दिया था। वाटरटन में बड़े ही अन्यायपूर्वक तरीके से उसका तिरस्कार हुआ। इस सबके बीच मैं यह भी बताना चाहूँगा कि एडिनबर्ग में एक नीग्रो रहता था, जिसने वाटरटन के साथ यात्रा की थी। मरे हुए पक्षियों में भुस भर कर वह अपना जीवन यापन करता था। इस काम में उसे महारथ हासिल थी। कुछ पैसे लेकर उसने मुझे भी यह काम सिखा दिया। अक्सर मैं उसके पास बैठता था। वह बड़ा ही खुशमिज़ाज और बुद्धिमान व्यक्ति था।

मिस्टर लियोनार्ड हार्नर एक बार मुझे रायल सोसायटी ऑफ एडिनबर्ग की सभा में भी ले गए। वहाँ मैंने सर वाल्टर स्कॉट को अध्यक्ष के रूप में देखा। सर स्कॉट इस बात के लिए माफी माँग रहे थे कि वे उस पद के लायक नहीं थे। मैंने उन पर और समूचे दृश्य पर हैरानी और श्रद्धापूर्वक निगाह दौड़ायी। मैं समझता हूँ इसका कारण यह था कि मैं वहाँ काफी युवावस्था में पहुँच गया था और मैं रॉयल मेडिकल सोसायटी की सभाओं में जाता रहता था, लेकिन मुझे इस बात का गर्व था कि इन दोनों ही सोसायटियों ने कुछ ही बरस पहले मुझे अपनी सदस्यता प्रदान की थी, जो अपने आप में किसी भी सम्मान से कहीं अधिक था। यदि मुझे कभी बताया जाता कि मुझे यह सम्मान मिलेगा तो मैं कहता हूँ कि मुझे ही यह हास्यास्पद और असम्भव सा लगता, जैसे कि किसी ने मुझसे कह दिया हो कि 'तुम्हें इंग्लैन्ड का राजा चुना जाना चाहिए'।

एडिनबर्ग प्रवास के अपने दूसरे बरस में मैंने भूविज्ञान और प्राणीविज्ञान पर जेम्सन के व्याख्यान सुने, पर ये बहुत ही नीरस थे। इनका मुझ पर जो समग्र प्रभाव पड़ा, वह यही था कि मैं ताज़िन्दगी भूविज्ञान पर कोई किताब पढ़ने का प्रयास न करूँ या फिर विज्ञान का अध्ययन ही न करूँ। तो भी इतना तो पक्का ही है कि मैं इस विषय पर दार्शनिक व्याख्यान के लिए तैयार था, क्योंकि श्रापशायर के निवासी एक बुजुर्ग मिस्टर कॉटन को चट्टानों की अच्छी जानकारी थी। उन्होंने ही दो तीन बरस पहले श्रूजबेरी शहर में पड़े एक शिलाखण्ड के बारे में बताया था। इस शिलाखण्ड को लोग बेलस्टोन कहते थे। इसके बारे में बताते हुए उन्होंने कहा था कि कैम्बरलैन्ड या स्कॉटलैन्ड से पहले इस तरह की चट्टानें नहीं मिलती हैं। उन्होंने मुझे बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से बताया कि जिस जगह पर यह शिलाखण्ड पड़ा था, उस जगह तक यह कैसे पहुँचा, यह भेद तो शायद प्रलय के बाद भी नहीं खुलेगा।



इसका मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और मैं इस सुन्दर शिलाखण्ड के बारे में कई बार चिन्तन करता रहता था। इसी बीच जब मैंने यह वृत्तान्त पढ़ा कि किस प्रकार आइसबर्ग के माध्यम से बड़े बड़े शिलाखण्ड भी अपनी जगह बदल देते हैं, तो मैं पुलकित हो उठा, और मैं उन महाशय के भूविज्ञान के ज्ञान की दशा पर रीझ गया।

यह तथ्य भी मुझे उतना ही चमत्कारी लगा, जब सड़सठ वर्ष की अवस्था में मैंने सेलिसबरी क्रेग में एक प्रोफेसर से काले रंग की चट्टान के बारे में व्याख्यान सुना। हमारे आस पास तो ज्वालामुखीय चट्टानें हैं। उस परिवेश में बादामी आकार वाले किनारों और दोनों तरफ कठोर परत वाली इस चट्टान के बारे में उन्होंने कहा कि इसमें कोई दरार रही होगी जिस पर ऊपर से गाद भरती चली गयी। उपहासपूर्वक उन्होंने यह भी कहा कि कुछ लोग यह मानते हैं कि यह कठोर परत तरल रूप में नीचे से घुसी हुई होगी। यह लैक्चर सुनने के बाद तो भूविज्ञान के व्याख्यान सुनने में अपने परहेज़ पर मुझे कतई हैरानी नहीं हुई।

जेम्सन के व्याख्यान सुनने के बाद मैं मिस्टर मैकागिलिवरे से परिचित हुआ। ये एक संग्रहालय के क्यूरेटर थे। इन्होंने स्काटलैन्ड के पक्षियों पर एक बड़ी पुस्तक का प्रकाशन कराया। मैं उनके साथ प्राकृत इतिहास पर रोचक चर्चा करता रहता था, और वह मुझसे प्रसन्न भी रहते थे। उन्होंने मुझे कुछ दुर्लभ शल्क भी दिए। उस समय मैं समुद्री मोलस्कों का संग्रह कर रहा था, लेकिन इस संग्रह के लिए मुझ में कोई खास उत्साह नहीं था।

इन दोनों ही वर्षों में गर्मी की छुट्टियों में मैंने खूब मज़े मारे। हाँ, इतना ज़रूर था कि कोई न कोई पुस्तक मैं हमेशा पढ़ता रहता था। सन 1826 की गर्मियों में मैंने अपने दो दोस्तों को साथ लिया, अपने-अपने पिछू थैले लादे और नॉर्थ वेल्स की सैर को पैदल ही निकल गए। एक दिन मैं हम तीस मील तो चले ही जाते थे। एक दिन हमने स्नोडान में पड़ाव भी डाला। एक बार मैं अपनी बहन के साथ घुड़सवारी करता हुआ नॉर्थ वेल्स की सैर को भी गया था। एक नौकर ने काठी वाले झोले में हमारे कपड़े संभाले हुए थे। पतझड़ का सारा मौसम निशानेबाजी में जाता था। यह समय मैं ज्यादातर वुडहाउस में मिस्टर ओवेन और मायेर में अंकल जोस के साथ बिताता था। निशानेबाजी का तो मुझ पर जुनून-सा सवार था। इतना कि जब मैं सोने के लिए जाता तो अपने शिकारी जूते भी पलंग के पास ही रख लेता था ताकि सवेरे उठते ही उन्हें पहन सकूँ और अपना एक मिनट भी बरबाद किए बिना तैयार हो जाऊँ।

एक बार 20 अगस्त को तो अपने इसी प्रिय खेल के चक्कर में मैं मायेर में काफी दूर तक निकल गया, और घने सरकण्डों तथा स्काटलैन्ड में पाए जाने वाले देवदार के पेड़ों के बीच सारा दिन गेमकीपर के साथ भटकता रहा। पूरे मौसम में मैं जितने पक्षियों का शिकार करता था, उन सब का पूरा लेखा-जोखा रखता था। एक दिन वुडहाउस में मिस्टर ओवेन के ज्येष्ठ पुत्र कैप्टन ओवेन और उनके कज़िन मेजर हिल के साथ निशानेबाजी कर रहा था। यही मेजर हिल आगे चलकर लार्ड बेरविक के नाम से मशहूर हुए। इन दोनों ही से मेरी खूब छनती थी। इसी का फायदा उठाते हुए उस रोज़ दोनों ने मुझे खूब छकाया, क्योंकि जितनी बार मैं गोली चलाता और सोचता कि मैंने एक पक्षी मार लिया है तो फौरन ही दोनों में से कोई एक अपनी बन्दूक में गोली भरने का स्वांग करने लगता, और वहीं से चिल्लाता, 'तुम उस पक्षी की गिनती मत करना क्योंकि उसी वक्त मैंने भी गोली चलायी थी'। और तो और, गेमकीपर भी उनके इस मज़ाक को समझ गया और उन्हीं का साथ देने लगा। कुछ घंटों के बाद जब उन्होंने इस मज़ाक के बारे में बताया, तो साथ ही यह भी बताया कि उस दिन मैंने बहुत से पक्षियों का शिकार किया था, लेकिन मुझे नहीं मालूम है कि कितने पक्षियों का, क्योंकि उनके मज़ाक के चक्कर में मैंने गिनती नहीं की थी। अमूमन ऐसा होता था कि अपने कोट के बटन के साथ मैं एक धागा लटका लेता था और जितने पक्षी मैं मारता था उतनी ही गाँठें उस धागे में लगाता जाता था, पर उस दिन मैं ऐसा नहीं कर पाया था। यह मेरे ठिठोलीबाज़ दोस्तों को मालूम था।

मैं इस निशानेबाजी में क्यों रुचि लेने लगा था, मुझे नहीं मालूम, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि उस वक्त मैं निशानेबाजी के चक्कर में विवेकशून्य हो गया था। तभी तो मैं यह सोचने लगा था कि अच्छी निशानेबाजी भी बुद्धिमानी की निशानी है, क्योंकि यह जानना भी एक कला है कि अच्छे शिकार कहाँ मिलेंगे और उनका शिकार कैसे किया जाए।

मैं सन 1827 में जब पतझड़ के मौसम में मायेर गया हुआ था, तो वहाँ पर सर जे मेकिनटोश से भेंट हुई। मुझे जितने भी वक्ता मिले उनमें वे सर्वोत्तम थे। बाद में पीठ पीछे मेरी तारीफ करते हुए उन्होंने गर्व से कहा था, 'इस युवक में कुछ है जो मुझे रुचिकर लगा।' शायद उन्होंने भी देख लिया था कि उनकी बतायी हर बात को मैं कितने ध्यान से सुन रहा था, और मैं तो इतिहास, राजनीति और नैतिक दर्शनशास्त्र के बारे में निराबुद्ध था। किसी प्रसिद्ध व्यक्ति से अपनी प्रशंसा सुनना किसी भी युवक को अच्छा लगता है, क्योंकि यह उसे सही रास्ते पर लगाए रखता है, हालांकि इस प्रकार की तारीफ से कुशाग्रता बढ़ती है लेकिन कई बार मिथ्या अहं भी बढ़ सकता है।

बाद के दो-तीन बरस में जब मैं मायेर गया तो मैंने निशानेबाजी नहीं की, फिर भी समय शानदार गुज़रा। वहाँ का जीवन एकदम तनाव रहित था। पैदल घूमने या घुड़सवारी करने के लिए दूर-दराज के इलाके बड़े ही दिलकश थे, और शाम को सब बैठकर संगीत और गप्पबाजी का आनन्द लेते थे। हमारी गप्पें बहुत व्यक्तिगत नहीं होती थीं, जैसा कि बड़े परिवारों में अक्सर होती हैं। गर्मियों में पूरा परिवार अक्सर पुराने पोर्टिको की सीढ़ियों में बैठ जाता था। सामने ही फुलवारी थी और मकान के ठीक सामने फैला हुआ ढलवाँ जंगल नदी में चमकता रहता था। नदी में मछलियों की छल्लाँ या जल पक्षियों का तैरना बड़ा ही मनमोहक था। मेरे दिलो दिमाग पर मायेर की उन शामों की याद आज भी ताज़ा है। मैं अंकल जोस का बहुत आदर करता था और मुझे उनसे लगाव भी बहुत था। वे बहुत ही मौन प्रकृति के और एकान्तप्रिय व्यक्ति थे, लेकिन मुझसे कई बार खुलकर बातें करते थे। वे अत्यन्त सरल और स्पष्ट विवेक के स्वामी थे। मुझे नहीं लगता कि संसार में ऐसी कोई भी शक्ति होगी जो उन्हें उस मार्ग से विचलित कर सके, जो मार्ग उनकी समझ में सही हो। उनके बारे में मैं होरेस के काव्य की कुछ पंक्तियाँ कहता था।

कैम्ब्रिज, 1828-1831 एडिनबर्ग में दो सत्र गुज़ारने के बाद, पता नहीं मेरे पिता को मालूम हो गया, या मेरी बहनों ने बता दिया कि मैं फिजीशियन बनने का विचार पसन्द नहीं करता। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं पादरी बन जाऊँ तो बेहतर होगा। क्योंकि मैं एक निठल्ला शिकारी बनूँ, इस बात के वे प्रखर विरोधी थे। उस समय तो यही सम्भावना ज्यादा थी कि मैं शिकारी बनने की ओर कदम बढ़ा रहा था। मैंने सोचने के लिए कुछ मोहलत माँगी, ताकि चर्च ऑफ इंग्लैन्ड के सभी धर्मसूत्रों के प्रति अपने मन में विश्वास पैदा कर सकूँ, क्योंकि सुनी सुनाई बातों के कारण मैं मन में बहुत-सी आशंकाएं घर कर चुकी थीं। इसके अलावा मैं पादरी बनने के विचार को पसन्द करता था। इसी क्रम में मैंने ईसाई सिद्धान्तों पर पीयरसन के लेख और अन्य धर्मग्रन्थ बहुत ही सावधानी से पढ़े। उस समय तो बाइबल के प्रत्येक शब्द में वर्णित सत्य का कड़े और अक्षरशः पालन करने में मुझे संदेह नहीं रह गया। जल्द ही मैं इस बात का मुरीद हो गया कि ईसाई मत के सिद्धान्तों का सम्पूर्ण रूप से पालन होना चाहिए। इस बात पर ध्यान दूँ कि मेरे विचारों के कारण किस प्रकार से मुझ पर रूढ़िवादियों ने हमले किए, तो यह बड़ा ही असंगत लगता है कि कभी मैं पादरी बनना चाहता था। वैसे मेरा तो अभिप्राय नहीं था और मैंने पिताजी की इच्छा को छोड़ा भी नहीं था, लेकिन पादरी बनने का यह विचार भी उस समय स्वाभाविक रूप से दम तोड़ गया, जब मैंने प्रकृतिवादी के रूप में बीगल में काम शुरू किया। यदि मानस विज्ञानियों का भरोसा किया जाए तो मैं पादरी बनने के लिए कई मायनों में एकदम सही था। कुछ वर्ष पहले जर्मन मानस विज्ञानी सोसायटी के कार्यालय से मुझे एक पत्र मिला था, जिसमें उन्होंने काफी शिद्दत के साथ मेरा फोटो माँगा था। कुछ समय बाद मुझे उनकी बैठकों का

वृत्तान्त प्राप्त हुआ, उसमें यह उल्लेख था कि मेरे ललाट का आकार प्रकार वहां चर्चा का विषय रहा, और वहाँ मौजूद एक वक्ता ने तो यहाँ तक कहा कि मेरे जैसा उन्नत ललाट तो दस पादरियों को मिलाकर भी नहीं होगा। जब यह तय हो गया कि मैं पादरी बनूँ तो यह भी ज़रूरी हो गया कि इस दिशा में तैयारी करने के लिए मैं किसी इंग्लिश यूनिवर्सिटी में पढ़ने जाऊँ और उपाधि हासिल करूँ। मेरे साथ संकट यह था कि स्कूल छोड़ने के बाद मैंने कोई शास्त्रीय ग्रन्थ नहीं पढ़ा था। मुझे यह जान कर बड़ा ही क्षोभ हुआ कि इन दो बरस के दौरान स्कूल में पढ़ा हुआ सब कुछ भूल गया था। सब कुछ। यहाँ तक कि ग्रीक वर्णमाला के कुछ अक्षर भी। इसलिए मैं अक्टूबर में ठीक समय पर कैम्ब्रिज नहीं जा सका, बल्कि श्रूजबेरी में ही प्राइवेट ट्यूटर से पढ़ा और फिर क्रिसमस की छुट्टियों के दौरान 1828 की शुरुआत में ही कैम्ब्रिज जा पाया। मैंने जल्द ही स्कूल की सारी पढ़ाई को याद कर लिया, और होमर तथा ग्रीक टेस्टामेन्ट जैसी आसान ग्रीक पुस्तकों का सुविधानुसार अनुवाद भी कर लेने लगा था।

यदि शैक्षणिक ज्ञान को देखा जाए तो मैंने कैम्ब्रिज में तीन बरस का अपना समय बरबाद किया। यह ठीक वैसा ही रहा जैसा एडिनबर्ग में स्कूल में हुआ था। मैंने गणित का अभ्यास शुरू किया, और 1828 की गर्मियों में बारमाउथ में प्राइवेट ट्यूटर भी रखा, लेकिन मेरी पढ़ाई बहुत धीमी चल रही थी। मुझे बीजगणित के शुरुआती सूत्र तो बेमतलब ही लग रहे थे। पढ़ाई में इस तरह की अधीरता दिखाना एक तरह से बेवकूफी थी, क्योंकि बाद के समय में मैं खुद को ही कोसता था कि मैंने मेहनत क्यों नहीं की और गणित के कुछ विख्यात सूत्रों को क्यों नहीं समझा। मुझे लगने लगा था कि गणित की जानकारी रखने वाले प्रबल मेधा के स्वामी होते हैं। लेकिन साथ ही मुझे यह भी महसूस हुआ कि गणित की पढ़ाई में मैं खास कुछ कर भी न पाता। शास्त्रीय ज्ञान के बारे में मैंने कॉलेज के अनिवार्य लैक्चरों के अलावा कुछ खास नहीं किया, और इनमें भी मैं मामूली तौर पर ही जाता था।

अपने दूसरे वर्ष के दौरान लिटिल गो पास करने के लिए मैंने एक या दो महीने जमकर मेहनत की और बेड़ा पार हो गया। इसी तरह से अंतिम वर्ष में बीए की डिग्री पाने के लिए मैंने मनोयोग से अध्ययन किया, अपना शास्त्रीय ज्ञान, बीजगणित और यूक्लिड दोहराया। यूक्लिड में मुझे वैसा ही आनन्द आया जैसा कि स्कूली दिनों में आता था। बीए की परीक्षा पास करने के लिए मुझे पाले द्वारा लिखित एविडेन्स ऑफ फिलॉस्फी पढ़ना भी ज़रूरी था। यह काम मैंने मन लगाकर किया और मुझे यह तो भरोसा हो ही गया था कि मैं सम्पूर्ण एविडेन्स को पूरी शुद्धता के साथ लिख सकता था। हाँ, इतना ज़रूर है कि पाले जैसी स्पष्ट भाषा नहीं लिख पाता। इस किताब के विभिन्न प्रकार के तर्कों ने, और मैं यह भी कहूँगा कि उनकी प्राकृतिक आध्यात्म विद्या ने मुझे यूक्लिड जैसा ही आनन्द प्रदान किया। इन रचनाओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन हमारे शैक्षणिक पाठ्यक्रम का वह भाग था जो मेरे दिमागी विकास के लिए शिक्षण में ज़रा-सा भी काम का नहीं था। मैंने इन रचनाओं की तोता रटत का प्रयास नहीं किया। इसे मैं तब भी बेकार मानता था और आज भी मानता हूँ। मैंने उस समय पाले की भूमिका के बारे में स्वयं को ज्यादा परेशान नहीं किया; इसी विश्वास के बूते मैं तर्क वितर्क की परम्परा से खुश और सन्तुष्ट भी रहा। पाले के सभी प्रश्नों का ठीक उत्तर देने, यूक्लिड में बेहतर तैयारी और शास्त्रों की पढ़ाई में भी दयनीय रूप से असफल न होने के कारण मुझे आनर्स न करने वाली पोल्लोई या लोगों की भीड़ में अच्छा स्थान और डिग्री भी मिल गयी। मुझे ठीक तरह से तो नहीं मालूम कि मेरा रैंक कितना ऊपर था, लेकिन मुझे थोड़ा बहुत याद है कि सूची में पाँचवें, दसवें या शायद बारहवें स्थान पर था।

यूनिवर्सिटी में कई विषयों पर सार्वजनिक व्याख्यान दिए जाते थे, और इनमें हाजिर होना अपनी मर्जी के मुताबिक था, लेकिन एडिनबर्ग में लैक्चर सुन सुनकर मैं इतना ऊब गया था कि मैं सेडविक के प्रभावशाली और रोचक व्याख्यानों में भी नहीं गया। यदि मैं उन व्याख्यानों में गया होता तो बहुत पहले ही भूविज्ञानी बन जाता। हालांकि मैंने वनस्पतिशास्त्र में हेन्सलो के व्याख्यान सुने और उनकी स्पष्टता को तथा अत्यधिक प्रभावशाली

उद्धरणों को मैंने बहुत पसन्द किया लेकिन मैं वनस्पतिशास्त्र पढ़ता नहीं था। हेन्सलो अपने शिष्यों और यूनिवर्सिटी के कुछ पुराने सदस्यों को लेकर दूर दराज के इलाकों तक पैदल या घोड़ागाड़ी में या फिर नदी के बहाव के साथ साथ बजरे में बैठकर अध्ययन यात्राओं पर जाते थे। इस दौरान पाए जाने वाले दुर्लभ पौधों और पशुओं पर वे व्याख्यान देते। ये अध्ययन यात्राएँ बड़ी मनोरंजक होती थीं।

इस समय वैसे तो यही लग रहा होगा कि कैम्ब्रिज में पढ़ाई के दौरान मेरे जीवन के कुछ निर्धारक पहलू उजागर हो रहे थे, तो भी मैं यही कहूँगा कि वहाँ मेरा समय बुरी तरह से बरबाद हो रहा था। भयंकर बरबादी। निशानेबाजी की और शिकार करने की मेरी भावना मर चुकी थी, और अब मुझे देश के दूर दूर के हिस्सों की सैर करने में मज़ा आने लगा था। मैं दूर दूर तक घुड़सवारी करता। यहाँ मैं एक नई ही चांडाल चौकड़ी में फँस गया था। हमारी इस मंडली में कुछ लफंगे और नीच प्रवृत्ति के युवक भी थे। हम अक्सर शाम को एक साथ भोजन करते, हालांकि इनमें हमारे साथ अक्सर कोई न कोई गरिमाय व्यक्ति भी रहता था, और कई बार हम ज्यादा पी लेते थे, और बाद में गाते रहते या ताश खेलते। इस तरह से जितनी शामें मैंने गुज़ारीं, मुझे आज भी उसके लिए शर्म महसूस होती है। हालांकि मेरे कुछ मित्र बहुत ही खुशमिजाज़ थे और हम सभी के दिमाग सातवें आसमान पर थे, लेकिन कुल मिलाकर मुझे उन दिनों की याद बहुत सुखदायक नहीं है।

लेकिन मुझे यह जानकर खुशी भी है कि मेरे कुछ और दोस्त भी थे जो पूरी तरह अलग प्रकृति के थे। व्हिटले के साथ मेरी दांत-काटी दोस्ती वाला मामला था। बाद में वह सीनियर रेंगलर बना। हम दोनों काफी दूर तक घूमने निकल जाते थे। उसने मुझमें अच्छे चित्रों और नक्काशियों के प्रति रुझान पैदा किया। इनमें से कुछ कलाकृतियाँ मैंने खरीदीं भी। मैं अक्सर फिट्जविलियम गैलरी भी जाता रहता था, और लगता है मेरी रुचि भी काफी अच्छी थी, क्योंकि मैंने हमेशा अच्छे चित्रों की प्रशंसा की थी, और उनके बारे में बुजुर्ग क्यूरेटर से चर्चा भी करता था। मैंने सर जोशुआ रेनाल्ड की किताब काफी रुचि के साथ पढ़ी। हालांकि यह रुचि मेरे प्राकृतिक रुझान में नहीं थी, तो भी कुछ बरस तक मैंने इसमें काफी रुचि ली, और लन्दन स्थित नेशनल गैलरी के कई सारे चित्र मुझे बहुत आनन्दित करते थे, और सेबेस्टियन देल पियेम्बो के चित्र तो जैसे मुझे दिव्यलोक में ले जाते थे।

मैं एक संगीत मंडली में भी जाता था। मेरा एक जोशीला दोस्त हर्बर्ट मुझे वहाँ ले गया। उसके पास हाई रेंगलर की उपाधि भी थी। इस मंडली में शामिल होने और उनकी धुनों को सुनकर मुझमें संगीत के प्रति गहरा लगाव पैदा हो गया था। मैं अपनी सैर का समय इस तरह रखता था कि सप्ताह के दिनों में किंग्स कालेज के चैपल में उस मंडली को राष्ट्रगान की धुन बजाते सुन सकूँ। इसमें मुझे इतना गहरा आनन्द आता था कि कई बार मेरी रीढ़ में सिहरन दौड़ जाती थी। मैं पक्के तौर पर कह सकता हूँ कि इस लगाव में कोई बनावट या केवल नकल नहीं थी, क्योंकि मैं कई बार खुद ही किंग्स कालेज चला जाता था, और कई बार तो गिरजे की गायन मंडली के बच्चों को पैसे देकर अपने कमरे में उनका गायन सुनता था। यह बात दूसरी है कि मेरे कान संगीत को समझने के मामले में दीन हीन थे। मैं एक भी धुन समझ नहीं पाता था, और न ही कोई धुन बजा पाता था। सही तरीके से गुनगुनाना तो मेरे लिए कठिन था, फिर भी यह रहस्य ही है कि मैं संगीत का आनन्द क्योंकर ले पाता था।

मेरी संगीत मंडली के मेरे मित्रों ने जल्द ही मेरी हालत का अन्दाजा लगा लिया। कई बार वे सब संगीत में मेरा इम्तिहान लेते और अपना मनोरंजन भी करते। वे कोई धुन बजाते और फिर सब मुझसे पूछते कि इनमें कौन कौन सी धुनों को मैं पहचान सकता हूँ। इन्हीं धुनों को जब वे सामान्य से द्रुत या मंथर गति से बजाते थे तो मेरे लिए और भी कठिनाई होती थी। इस तरह से तो गॉड सेव्ड द किंग की धुन भी मेरे लिए कष्टप्रद पहेली बन जाती थी। एक और व्यक्ति भी था जो संगीत में मेरे जितनी ही समझ रखता था और कहने में अटपटा लगता है कि वह थोड़ा बहुत बांसुरी भी बजा लेता था। हमारी संगीत मंडली की परीक्षाओं में एक बार मैंने उसे पराजित कर दिया तो

मुझे बहुत खुशी हासिल हुई थी।

कैम्ब्रिज में रहने के दौरान मैं जिस उत्सुकता और लगन से भृंगी कीट पकड़ता था वह मेरे लिए आनन्ददायक था, और जितना आनन्द मुझे इस काम में मिलता था, उतना किसी अन्य काम में नहीं आता था। यह काम केवल संग्रह का जुनून था, क्योंकि मैं इन कीटों की चीर फाड़ नहीं करता था। हाँ, इतना ज़रूर है कि प्रकाशित विवरणों के साथ इन कीटों के बाहरी लक्षण यदा-कदा मिला लेता था, लेकिन मैं उनके नाम ज़रूर रख लेता था। कीट संग्रह के बारे में मैं अपने उत्साह के प्रमाणस्वरूप एक घटना बताता हूँ।

एक दिन पेड़ की पुरानी छाल उतारते समय मुझे दो दुर्लभ भृंग दिखाई दिए। मैंने दोनों को एक एक हाथ से उठाया, तभी मुझे तीसरा भृंग भी दिखाई दिया। मैं उसे भी छोड़ना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने हाथ में पकड़े हुए एक भृंग को मुँह में रख लिया। दुर्भाग्यवश उस कीट में से कोई तीखा तरल पदार्थ निकला जिससे मेरी जीभ जल गयी और मैं थू थू कर उठा। भृंग मुँह से बाहर गिरा और साथ ही तीसरा भृंग भी हाथ न आया।

मैं इस प्रकार के कीटों का संग्रह करने में काफी सफल रहा और इसके लिए मैंने दो नए तरीके ईजाद किए। मैंने एक मज़दूर रख लिया था जो सर्दियों में जम गए पुराने वृक्षों की छाल को काट छाँट कर बड़े थैले में भर लाता था, और इसी तरह दलदली इलाकों से सरकंडे लाने वाले बज्रों की तली में से कूड़ा कचरा बटोर लाता था। इस तरह से मुझे कुछ दुर्लभ प्रजाति के भृंग भी मिले।

शायद किसी कवि को अपनी पहली कविता के प्रकाशन पर भी इतनी प्रसन्नता नहीं होती होगी, जितनी मुझे उस समय हुई, जब मैंने स्टीफन की इलस्ट्रेशन्स ऑफ ब्रिटिश इन्सेक्ट्स, में यह जादुई शब्द देखे - सर, सी डार्विन द्वारा संगृहीत। मेरे दूर के रिश्ते के चचेरे भाई डब्ल्यू डार्विन फॉक्स एक चतुर और बहुत ही खुशमिजाज व्यक्ति थे, उस समय क्राइस्ट कालेज में पढ़ते थे। मैं इनके साथ काफी हिल मिल गया था और इन्होंने ही मुझे कीट विज्ञान से परिचित कराया। इसके बाद मैं ट्रिनिटी कालेज के एल्बर्ट वे से भी परिचित हुआ और उनके साथ भी कीट संग्रह के लिए जाने लगा। आगे चलकर यही सज्जन सुविख्यात पुरातत्त्ववेत्ता बने। साथ में उसी कालेज के एच थाम्पसन भी होते थे। बाद में यह प्रसिद्ध कृषिविज्ञानी, ग्रेट रेलवे के चेयरमैन और संसद सदस्य भी बने। लगता है कि भृंगी कीटों के संग्रह की मेरी रुचि में ही भविष्य में मेरे जीवन की सफलता की सूत्र छिपा हुआ था। मुझे इस बात की हैरानी है कि कैम्ब्रिज में मैंने जितने भृंगी कीट पकड़े, उनमें से कई ने मेरे दिमाग पर अमिट छाप छोड़ दी थी। जहाँ जहाँ मुझे अच्छा संग्रह करने का मौका लगा उन सभी खम्भों, पुराने वृक्षों और नदी के किनारों को मैं आज भी याद कर सकता हूँ। उन दिनों पेनागियस क्रक्स मेजर नामक प्यारा भृंगी कीट एक खजाने की तरह से था, और डॉन में घूमते हुए मैंने एक भृंगी कीट देखा जो कि सड़क पर दौड़ता हुआ जा रहा था। मैंने भाग कर उसे पकड़ा, और तुरन्त ही मैंने अंदाज़ा लगा लिया कि यह पेनागियस क्रक्स मेजर से थोड़ा अलग है। बाद में पता चला कि वह पी क्वाड्रिपंकटेस था, जो कि इसकी एक किस्म या इसी की निकट सम्बन्धी प्रजाति है, लेकिन इसकी बनावट में थोड़ा अन्तर है। मैंने उन दिनों लिसीनस को कभी जिंदा नहीं देखा था, यह कीट भी अनजान व्यक्ति के लिए काले कैराबाइडुसस भृंग से शायद ही अलग लगे, लेकिन मेरे बेटों ने यहाँ एक ऐसा ही कीट पकड़ा और मैं तुरन्त जान गया कि यह मेरे लिए नया है। तो भी पिछले बीस साल से मैंने ब्रिटिश भृंगी कीट नहीं देखा है। मैंने अभी तक वह परिस्थिति नहीं बतायी है जिसने दूसरी बातों की तुलना में मेरे समूचे कैरियर को सर्वाधिक प्रभावित किया। यह घटना थी, प्रोफेसर हेन्सलो के साथ मेरी दोस्ती। कैम्ब्रिज आने से पहले मैंने अपने भाई से उनके बारे में सुना था। प्रोफेसर हेन्सलो विज्ञान की हर शाखा के बारे में जानते थे, और मैं उनके प्रति नतमस्तक था। सप्ताह में एक बार वे ओपन हाउस रखते थे। उस दिन यूनिवर्सिटी में विज्ञान विषय पढ़ने वाले सभी अन्डर ग्रेजुएट और पुराने सदस्य एकत्र होते थे। फॉक्स के माध्यम से जल्द ही मुझे भी सभा में शामिल होने का निमंत्रण

मिला और उसके बाद मैं नियमित रूप से वहाँ जाने लगा। हेन्सलो के साथ घुलने मिलने में मुझे अधिक समय नहीं लगा। कैम्ब्रिज में बाद के दिनों में मैं ज्यादातर उन्हीं के साथ सैर करने जाता था। कुछ गुरुजन तो मुझे यह भी कहने लगे थे, 'हेन्सलो के साथ घूमने वाला व्यक्ति' और अक्सर शाम को वे मुझे अपने परिवार के साथ भोजन पर बुला लेते थे। वनस्पति शास्त्र, कीट विज्ञान, रसायन, खनिज विज्ञान और भूविज्ञान में उन्हें व्यापक ज्ञान था। लम्बे समय तक निरन्तर चलने वाले सूक्ष्म अवलोकन से निष्कर्ष निकालने की उनकी रुचि बहुत गहरी थी। उनकी निर्णय शक्ति अद्वितीय और उनका दिमाग संतुलित था, लेकिन मुझे कोई भी तो ऐसा नहीं दिखाई देता था जो यह कहे कि प्रोफेसर हेन्सलो में आत्म प्रज्ञा नहीं थी।

वे बहुत ही धार्मिक और रुढ़िवादी थे। एक दिन उन्होंने मुझे बताया कि थर्टीनाइन आर्टिकल्स का अगर एक भी शब्द बदला जाए तो उन्हें बहुत दुख होगा। उनके नैतिक गुण अत्यधिक प्रशंसनीय थे। उनमें लेश मात्र भी मिथ्या अहंकार नहीं था। वे अन्य क्षुद्र भावनाओं से भी कोसों दूर थे। मैंने ऐसा व्यक्ति नहीं देखा था जो अपने और अपने कार्य व्यापार के बारे में बहुत ही कम सोचता हो। वे हर प्रकार की अहंमन्यता या इसी प्रकार की संकीर्ण विचारधारा से पूरी तरह मुक्त थे। उनका स्वभाव अत्यन्त शान्त था, वे सुशील थे और दूसरे के दिल को जीत लेते थे, लेकिन वे किसी भी गलत काम के खिलाफ बहुत ही जल्दी आक्रोश से भर जाते थे, और फौरन ही उसे रोकने का प्रयास भी करते थे।

एक बार मैं उनके साथ कैम्ब्रिज की सड़कों पर घूम रहा था। अचानक ही मैंने बड़ा भयंकर दृश्य देखा जो शायद फ्रांसीसी क्रान्ति में ही दिखाई दिया होगा। दो उठाईगीरों को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था, और जेल ले जाते समय उग्र भीड़ ने उन्हें हवलदार के हाथों से झपट लिया, और उसी धूलभरी तथा पथरीली सड़क पर दोनों उठाईगीरों की टाँगें पकड़कर घसीटने लगे। वे दोनों ही सिर से पैर तक धूल से सने हुए थे। लात घूसों और पत्थरों की मार से उनके चेहरे लहलुहान थे। दोनों ही अधमरे हुए जा रहे थे। भीड़ इतनी ज्यादा थी कि उन दोनों आफत के मारे उठाईगीरों की एक झलक भर देख पाए थे हम दोनों। उस भयंकर दृश्य को देखकर हेन्सलों के चेहरे पर जो पीड़ा मैंने देखी वैसी मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखी। उन्होंने बार बार भीड़ को चीरकर रास्ता बनाने की कोशिश की लेकिन वह तो असम्भव था। वे तुरन्त मेयर के पास भागे और मुझसे कहा कि उनके पीछे आने के बजाये मैं कुछ और पुलिसवालों को बुला लाऊँ। बाकी तो याद नहीं, हाँ इतना ज़रूर हुआ कि पुलिस दोनों उठाईगीरों को जिन्दा ही जेल पहुँचाने में सफल रही।

हेन्सलो की परोपकारिता अपरिमित थी। उन्होंने गरीब देहातियों के लिए जो बेहतरीन योजनाएं तैयार कीं, उनसे इसके पक्के प्रमाण मिलते हैं। हिचेम में रहने के दौरान तो उन्होंने बहुतों का भला किया। ऐसे इंसान के साथ तो मेरी घनिष्ठता होनी ही थी, और मेरे ख्याल से यह मेरे लिए अपार लाभदायक भी रहा।

मैं एक छोटा-सा वाक्या बताता हूँ जो उनकी उदारता को प्रकट करता है। नमीदार सतह पर पराग कणों की परीक्षा करते समय मैंने देखा कि कुछ गाँठें सी निकल आयी हैं। अपनी यह आश्चर्यजनक खोज उन्हें तुरन्त बताने के लिए मैं भागा भागा गया। उनकी जगह वनस्पतिशास्त्र का कोई दूसरा प्रोफेसर होता तो इस तरह की जानकारी देने के लिए मेरी बदहवासी पर हंसे बिना न रहता। लेकिन उन्होंने इस घटना को बड़ा रोचक बताया और इसका

आशय समझाते हुए यह भी स्पष्ट किया कि यह कोई नई घटना नहीं है, बल्कि सर्वविदित है। इस घटना से वे तो बहुत कम प्रभावित हुए लेकिन मुझे उन्होंने यही एहसास कराया कि मैंने स्वयं ही बहुत उल्लेखनीय तथ्य को भली प्रकार समझ लिया है। साथ ही मैं इसके लिए भी कृतसंकल्प हो उठा कि अब अपनी खोज को लेकर इतनी जल्दबाजी नहीं करूँगा।

डॉक्टर व्हीवेल पुराने परिचितों और खास लोगों में से एक थे। हेन्सलो के पास इनका आना जाना होता रहता था। मैं कई बार रात में उनके साथ ही घर लौटता था। गम्भीर विषयों पर व्याख्यान देने में सर जे मेकिनटोश के बाद उन्हीं का स्थान था, लेकिन मैंने उनके व्याख्यान कभी नहीं सुने। हेन्सलो और लियोनार्ड जेन्यन्स में जीजा साले का रिश्ता था। लियोनार्ड भी कभी कभार हेन्सलो के यहाँ रुकते थे। इन्होंने आगे चलकर प्राकृतिक इतिहास में बहुत से उत्कृष्ट निबन्ध प्रकाशित कराए। लियोनार्ड जब फैन्स (स्वाथम बुलबेक) की सीमा पर रह रहे थे, तो मैं खास मेहमान के तौर पर उनके पास गया था। उनके साथ भी प्राकृत इतिहास पर मैंने खूब बातें कीं। हम मिलकर सैर को गए। मैं अपने से उम्र में बड़े कई लोगों से परिचित हुआ जो विज्ञान के बारे में अधिक चिन्ता नहीं करते थे, लेकिन वे सब हेन्सलो के दोस्त थे। इनमें एक स्कॉटमैन भी थे जो सर अलेक्जेंडर रैमसे के भाई थे, और जीसस कालेज में शिक्षक थे। बहुत कम उम्र में ही इनका देहान्त हो गया था। एक मिस्टर डावेस भी थे जो बाद में हरफोर्ड के डीन बने। गरीबों के लिए शिक्षा व्यवस्था तैयार करने में इन्होंने बहुत नाम कमाया। इन लोगों और ऐसे ही ज्ञानवान लोग तथा हेन्सलो सब मिलकर ग्रामीण इलाकों में दूर दूर तक अध्ययन यात्राओं पर जाते थे। इनमें मुझे भी बुलाया जाता था और सभी मुझे तहे दिल से साथ रखते थे।

अतीत पर नजर डालूँ तो मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि मुझमें ऐसा ज़रूर कुछ था जो मुझे आम नौजवानों से अलहदा बनाए हुए था। वरना तो मैं जिन लोगों के साथ रहता था वे न केवल उम्र में मुझसे बड़े थे बल्कि कहीं ज्यादा पढ़े लिखे भी थे, और ऐसा न होता तो उन्होंने मुझे कभी भी साथ न लिया होता।

मैं अपने एक शिकारी दोस्त टर्नर की बात याद कर बैठता हूँ, जिसने मुझे गुबरैलों का संग्रह करते देखकर कहा था कि तुम एक दिन रॉयल सोसायटी के फैलो बनोगे। उसकी आत्मा की यह आवाज़ मुझे उस समय निरर्थक लगी थी।

कैम्ब्रिज में अपने अंतिम वर्ष में मैंने अत्यधिक सावधानी बरतते हुए और रुचि लेते हुए हम्बोल्ड लिखित पर्सनल नरेटिव का अध्ययन किया। इस रचना और सर जे हर्शेल लिखित इंट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ नेचुरल फिलासफी ने मेरे मन में इस उत्साह को और भी बढ़ावा दिया कि मैं भी प्राकृत विज्ञान की विशाल संरचना में अपना तुच्छ योगदान देने का प्रयास करूँ। लगभग दर्जन भर दूसरी पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक ने मुझ पर इतना प्रभाव नहीं डाला जितना इन दोनों ने। मैंने हम्बोल्ड की पुस्तक में से टेनरिफेल के बारे में लिखे अंश की नकल की और अपनी अध्ययन यात्राओं के दौरान हेन्सलो (शायद), रैमसे और डेवेस के सामने इसका वाचन

किया, क्योंकि पहले किसी मौके पर मैंने टेनरिफेल की शोभा का जिक्र किया था, और हमारी मंडली के कुछ लोगों ने यह भी कहा था कि वे वहाँ जाने का प्रयास करेंगे, लेकिन मेरा विचार है कि वे सब अधूरे मन से कह रहे थे। लेकिन मैं तो भीतर से तैयार था और लन्दन के एक मर्चेंट से मिलकर जलयान के बारे में पूछताछ भी कर चुका था, लेकिन मेरी यह योजना बीगेन पर समुद्री यात्रा के आगे धरी रह गयी।

गर्मी की छुट्टियों का मेरा सारा वक्त गुबरैले पकड़ने, कुछ पढ़ाई करने और छोटी मोटी यात्राओं में निकल जाता था। पतझड़ के दौरान मेरा सारा समय निशानेबाजी में जाता था। मैं इसमें से ज्यादातर समय वुडहाउस और मायेर में गुज़ारता था। कई बार मैं आयटन के रईस के साथ भी रहता था। कुल मिलाकर कैम्ब्रिज में बिताए गए तीनों बरस मेरे जीवन के सर्वाधिक खुशी भरे रहे। मेरी सेहत बहुत बढ़िया रही और कुल मिलाकर मैं कभी दुखी नहीं रहा।

मैं 1831 की शुरुआत में क्रिसमस पर कैम्ब्रिज आया था, इसलिए अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भी मुझे दो सत्रों तक रोका गया; तब हेन्सलो ने ही मुझे समझा-बुझा कर भूविज्ञान का अध्ययन शुरू करने के लिए कहा। इसलिए श्रापशायर लौटने के बाद मैं भूखण्डों की व्यवस्था का अध्ययन करने लगा और श्रूजबेरी के आसपास के इलाकों के रंगदार नक्शे भी तैयार किए। प्राचीन चट्टानों का भूवैज्ञानिक अन्वेषण करने के लिए अगस्त की शुरुआत में प्रोफेसर सेडविक नार्थवेल्स की यात्रा शुरू करने वाले थे; हेन्सलो ने उनसे कहा कि वे मुझे भी साथ चलने की इजाज़त दें। सब तैयारी करके वे मेरे पिता के घर आकर रुके।

शाम को उनके साथ थोड़ी बातचीत ने मेरे दिमाग पर गहरा असर डाला। श्रूजबेरी के समीप ही एक दलदली गड्ढे की जाँच करते समय एक मज़दूर ने मुझे बताया कि उसे गड्ढे में से एक बड़ा पुराना-सा उष्णकटिबंधीय शंख मिला है। ऐसे शंख झोपड़ियों की चिमनियों में भी मिल जाते हैं, लेकिन उस मज़दूर ने शंख बेचने से मना कर दिया। मैं इस बात से पूरी तरह सहमत था कि उसे यह शंख वास्तव में गड्ढे में से ही मिला था। मैंने सेडविक को यह बात बताई तो (संदेह नहीं सच में) वे एकदम बोले कि किसी ने इसे गड्ढे में फेंक दिया होगा; लेकिन वे यह भी बोले कि यदि यह वहीं पड़ा रहता तो भूविज्ञान के लिए दुर्भाग्य की बात होती, क्योंकि यह हमें मिडलैन्ड काउन्टीज में धरातलीय मिट्टी के जमाव के बारे में काफी बातों की जानकारी देगा। दलदल की ये परतें वस्तुतः हिमनदीय युग से सम्बन्धित हैं, और बाद के वर्षों में ये मुझे आर्कटिक के टूटे हुए शंखों में भी मिले। लेकिन उस समय मैं एकदम हैरान रह गया कि सेडविक इस अद्भुत तथ्य पर खुश क्यों नहीं हुए कि उष्णकटिबंधीय इलाके का शंख यहाँ इंग्लैन्ड के बीचों बीच इलाके में ज़मीन के भीतर कहाँ से आया होगा। यद्यपि मैंने बहुत-सी वैज्ञानिक पुस्तकों का अध्ययन किया था, लेकिन इससे पहले मुझे इतनी गहराई से यह अहसास नहीं हुआ था कि तथ्यों का समूहीकरण करने में ही वैज्ञानिकता है, क्योंकि इसके बाद ही कोई सामान्य नियम या निष्कर्ष निकाला जा सकता है।



अगले दिन हम लेंगोलेन, कॉनवे, बेंगोर और कैपल कूरिंग के लिए निकल पड़े। इस यात्रा का एक लाभ तो मुझे यह मिल ही गया कि किसी देश के भूविज्ञान का अध्ययन किस प्रकार किया जाए। सेडविक मुझे कई बार अपने ही समानांतर चलने को कहते और कहते कि चट्टानों के नमूने लेते चलो तथा नक्शे पर उनका स्तर विन्यास भी चिह्नित करो। मुझे थोड़ा-सा संदेह है कि उन्होंने यह मेरी भलाई के लिए किया था, क्योंकि मैं उनकी सहायता करने में बहुत ही उदासीन रहता था। इस यात्रा के दौरान एक विशेष अनुभव भी हुआ कि जब तक ध्यान देकर न देखा जाए तो उत्कृष्टतम लक्षण को भी नज़र-अन्दाज़ कर देना कितना आसान होता है। क्वेम इड्वाल में हम दोनों ने कई कई घण्टे लगाकर सभी चट्टानों को बड़े ही ध्यान से देखा, क्योंकि सेडविक उनमें जीवाश्म (फॉसिल) तलाश रहे थे, लेकिन हम दोनों ही ने अपने चारों ओर बिखरे पड़े हिमनदीय लक्षणों पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया; हमने समतल तराशी चट्टानों, इधर उधर पड़े शिलाखंडों, आवसानिक और पार्श्वीय हिमोढ़ों पर नज़र ही नहीं डाली। हालांकि ये लक्षण इतने सुस्पष्ट हैं कि इसके कई वर्ष बाद फिलास्फिकल मैगजीन में प्रकाशित एक लेख में मैंने यह ज़िक्र किया कि वह घाटी अपनी कहानी ठीक उसी तरह से कह रही थी जिस तरह से जलकर खाक हुआ कोई मकान कहता है। यदि यह घाटी अभी भी हिमनद के पानी से भरी होती तो ये सभी लक्षण इतने मुखर न होते जितने इस समय हैं।

केपेल क्यूरिंग में मैं सेडविक से अलग हो गया और दिक्सूचक तथा नक्शे के सहारे नाक की सीध में चलता गया तथा पर्वतों को पार करता हुआ बारमाउथ तक गया। रास्ते में मैंने कभी भी निर्धारित मार्ग का अनुसरण नहीं किया। संयोगवश मिल गया तो दूसरी बात थी। इस प्रकार मैं एक अपरिचित बियाबान में जा पहुँचा, और इस तरह की यात्रा का मैंने खूब आनन्द उठाया। मैं बारमाउथ में पढ़ रहे कैम्ब्रिज के पुराने सथियों से मिला और वहाँ से श्रूजबेरी लौटा और निशानेबाजी के लिए मायेर चला गया। उस समय मुझ पर भूविज्ञान या किसी अन्य विज्ञान की बनिस्बत चकोर के शिकार का भूत सवार था।

बीगेल से समुद्रयात्रा : 27 दिसम्बर 1831 से 2 अक्टूबर 1836

नार्थ वेल्स की इस छोटी भूवैज्ञानिक यात्रा से लौटने पर मुझे बताया गया था कि कैप्टन फिट्ज राय को एक सहायक चाहिए, जो उनके साथ बिना कुछ भी वेतन लिए बीगेल की समुद्र यात्रा पर चल सके। उसे प्रकृतिवादी के रूप में काम करना होगा और बदले में उसे कैप्टन राय अपने केबिन की सभी कलाकृतियाँ देंगे। जहाँ तक मेरा विश्वास है मैंने अपने यात्रा संस्मरण रोजनामचे में उन सभी घटनाओं का जिक्र किया है जो उस दौरान घटित हुईं। यहाँ मैं केवल इतना ही बताऊँगा कि मैं भी इस प्रस्ताव को मानने के लिए पूरी तरह से इच्छुक था। लेकिन मेरे पिता ने इसका पुरज़ोर विरोध किया, और मेरी भलाई के लिए यह भी कहा, 'यदि तुम सामान्य बुद्धि का ऐसा कोई व्यक्ति बता सको जो तुम्हें वहाँ जाने की सलाह दे, तो मैं भी सहमति दे दूँगा।' इसलिए मैंने उसी शाम इन्कार करते हुए जवाब लिख दिया। अगली सुबह मैं पहली सितम्बर की तैयारी करने के लिए मायेर चला गया। मैं निशानेबाजी कर रहा था कि मुझे अंकल ने बुलवाया। उन्होंने मुझसे श्रूजबेरी चलने के लिए कहा और बोले कि वे मेरे पिता से चलकर बात करेंगे कि उस प्रस्ताव को मानना बुद्धिमानी का काम होगा। मेरे पिता हमेशा यह

मानते थे कि (मेरे अंकल) विश्व के सर्वाधिक समझदार व्यक्ति हैं। उनकी बात सुनते ही पिताजी ने फौरन सहमति दे दी। मैं कैम्ब्रिज में बहुत फिजूलखर्ची करता था, इसके लिए मैंने पिताजी को भरोसा दिलाया कि बीगेल यात्रा के दौरान मैं अपने भत्ते से ज्यादा खर्च नहीं करूँगा। पिताजी ने मुस्कराते हुए कहा, 'लेकिन उन्होंने मुझे बताया है कि तुम बहुत बुद्धिमान हो।'

अगले दिन मैं कैम्ब्रिज जाने को चल पड़ा। वहाँ हेन्सलो से मिला और फिर फिट्ज राय से मिलने लन्दन के लिए निकल गया। यह सारे काम आनन-फानन में हो गये। इसके बाद जब फिट्ज राय से कुछ घनिष्टता हो गयी तो उन्होंने मुझे बताया कि वे मेरी नाक की आकृति के कारण मुझे अपने साथ न लेने का मन बना चुके थे। वे लावेटर के प्रबल अनुयायी थे, और इस बात को पक्का मानते थे कि वे किसी भी इंसान के चेहरे से उसका चरित्र जान सकते थे। उन्हें संदेह था कि मेरे जैसी नाक वाले इंसान में इस समुद्र यात्रा के लिए पर्याप्त ताकत और इच्छाशक्ति भी होगी। लेकिन मैं समझता हूँ कि बाद में उन्हें यह तो संतोष हो गया होगा कि मेरी नाक ने गलत आभास दिया था।

फिट्ज राय का चरित्र विलक्षण था। उनमें बहुत से उत्तम लक्षण थे। वे अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित, किसी भी कमी के प्रति उदार, बहादुर, दृढ़ प्रतिज्ञ और गजब के ऊर्जावान तो थे ही, अपने सभी मातहतों के लिए जोशीले दोस्त भी थे। वे जिसे सहायता पाने लायक समझते थे, उस व्यक्ति के लिए कुछ भी कर गुजरते थे। वे एक सजीले, सुदर्शन व्यक्ति थे। उनका व्यवहार बहुत अधिक शिष्टता लिये हुए था। उनकी सभी आदतें उनके मामा प्रसिद्ध लार्ड केसलरीग से मिलती थीं, जैसा कि रियो के मिनिस्टर ने बताया था। बेशक उनका चेहरा चार्ल्स द्वितीय से मिलता-जुलता था। इसी सिलसिले में डॉक्टर विलिश ने अपना एक एलबम दिया था। उन्हीं चित्रों में से एक चित्र फिट्ज राय से बहुत मिलता जुलता था। बाद में चित्र के नीचे लिखा नाम मैंने पढ़ा डॉक्टर ई सोबेस्की स्टुआर्ट, काउन्ट ड'अल्बाइन जो कि उसी सम्राट के वंशजों में से थे।

फिट्ज राय का मिजाज़ बड़ा ही अजीब था। सवेरे-सवेरे तो उनका मूड आम तौर पर खराब ही रहता था। अपनी गिद्ध जैसी पैनी निगाह से उन्हें फौरन ही पता चल जाता था कि जलयान पर कुछ गड़बड़ है, और फिर इल्ज़ाम लगाने में वे किसी को भी बख्शते नहीं थे। वे मेरे प्रति काफी दयालु थे, लेकिन उनके साथ घनिष्टता कर पाना टेढ़ी खीर था। लेकिन एक ही केबिन में रहने के कारण हम दोनों की आदतों में कुछ घाल-मेल तो हो ही गया। हम कई बार एक दूसरे से उलझ भी जाते। ऐसे ही यात्रा की शुरुआत में ब्राजील के बाहिया नामक स्थान पर उन्होंने गुलामी प्रथा का पक्ष लिया और इसकी बड़ी तारीफ की, जबकि मुझे गुलामी प्रथा से नफरत थी। उन्होंने मुझे बताया कि वे एक ऐसे व्यक्ति से मिल चुके हैं जिसके पास कई गुलाम हैं। उन्होंने स्वयं ही अनेक गुलामों को पूछा था कि क्या वे खुश हैं, और क्या वे आज़ाद होना चाहते हैं। इस प्रश्न पर सभी का जवाब था - 'नहीं'। मैंने उस समय उपहास के लहज़े में कहा था कि मालिक के सामने उसके गुलामों का वह जवाब कोई मायने नहीं रखता। इससे वे बहुत नाखुश हो गए और बोले कि इसका मतलब यह भी हो सकता है, कि मैं उनके साथ रहना नहीं चाहता। मैंने सोचा कि अब जहाज तो छोड़ना पड़ेगा, लेकिन जैसे ही दूसरे लोगों को इस झगड़े की भनक लगी, तो जहाज के कैप्टन ने

फौरन ही अपने लैफ्टिनेन्ट को भेजा कि जाओ और राय के गुस्से को शान्त करने के लिए डार्विन को खरी-खोटी सुनाओ।

यहाँ मैं गन रूम के आफिसर्स के प्रति काफी शुक्रगुजार हूँ कि उन्होंने तुरन्त ही यह संदेश भेजा कि मैं उनके साथ रह सकता हूँ। लेकिन कुछ ही घंटे के बाद फिट्ज रॉय ने दरियादिली दिखाते हुए जहाज के एक अधिकारी की मार्फत माफी माँगते हुए यह भी अनुरोध किया कि मैं उनके साथ रह सकता हूँ।

कई बातों में वे बहुत महान चरित्र के इंसान थे। उनमें कुछ ऐसा भी था जो मुझे पहले पता नहीं था। बीगेल पर यह समुद्री यात्रा मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना रही, और इसी ने मेरे पूरे कैरियर का खाका तैयार किया। लेकिन ये सब कुछ एक छोटी-सी घटना पर आधारित था। घटना कुछ यूँ थी कि जिस दिन मेरे अंकल तीस मील सवारी चलाकर मुझे श्रूजबेरी लाए थे, संसार में बहुत कम नातेदारों ने ऐसा किया होगा, और तो और मेरी नाक भी इसमें आड़े आ रही थी। मैं हमेशा यह महसूस करता हूँ कि मेरे दिमाग के लिए इस यात्रा ने वास्तविक प्रशिक्षण या तालीम दी थी। इससे मुझे प्राकृतिक इतिहास की कई परतों की जानकारी मिली और चीज़ों को समझने की मेरी ताकत में बढ़ोतरी हुई, हालांकि ये सारी योग्यताएँ मुझमें पहले से मौजूद थीं।

मैं जितनी भी जगहों पर गया वहाँ के भूविज्ञान की जानकारी भी मेरे लिए काफी महत्वपूर्ण थी। यहाँ मुझे तर्कशास्त्र का भी सहारा मिला। किसी भी नए भू-भाग को अगर पहली बार देखें तो चट्टानों के ढेर से ज्यादा कुछ नहीं दीखता, लेकिन बहुत स्थानों पर चट्टानों और जीवाश्मों के संस्तरों और प्रकृति की जाँच करने के साथ साथ यदि मन में यह प्रश्न और आशा भी रखी जाए कि इसके अलावा और क्या मिल सकता है, तो उस भू-भाग के बारे में कुछ तथ्य उजागर होने शुरू हो जाते हैं। इस प्रकार सारी संरचना ही कमो-बेश सुबोध बनने लगती है। मैं अपने साथ लेयेल लिखित प्रिन्सिपल्स ऑफ ज्योलॉजी का पहला खंड भी लाया था, जिसे मैं सावधानीपूर्वक पढ़ता रहा। यह पुस्तक कई मायनों में मेरे लिए बहुत फायदेमन्द रही। वर्दे अंतरीप नामक द्वीप सेन्ट जेगो वह पहली जगह थी, जिसका मैंने निरीक्षण किया, और वहीं मुझे पता चल गया कि भूविज्ञान की जानकारी पर जितने लेखकों की रचनाओं को मैं पढ़ चुका था या बाद में पढ़ा, उनमें सबसे नायाब तरीका लेयेल का था।

इसी दौरान मैं एक और काम भी करता था, सभी प्रकार के जीवों का संग्रह। मैं इनका संक्षिप्त ब्यौरा लिखता और कुछेक समुद्री जीवों की छोटी मोटी चीरफाड़ भी करता था। पर एक कमी रही कि ड्राइंग में हाथ तंग होने और शरीर रचना की ज़रूरत भर जानकारी न होने के कारण इस यात्रा के दौरान मैंने जो संस्मरण लिखे, वे सब बेकार हो गए। इस तरह से मैंने काफी समय बरबाद किया। हाँ, इतना ज़रूर रहा कि क्रस्टेशियन्स की कुछ जानकारी हासिल हुई जिसकी मदद से मैं बाद में सिरीपेडिया पर अपना प्रबन्ध ग्रन्थ लिख सका।

दिन में थोड़ा वक्त निकाल कर मैं अपना रोजनामचा लिखता था। जो कुछ भी मैं देखता था उसे सावधानी से और विस्तारपूर्वक लिखता था। मैं समझता हूँ कि यह एक अच्छी आदत थी। मेरे रोजनामचे घर को लिखे गए खतों का भी काम करते थे। जब भी मौका मिलता मैं इनके कुछ अंश इंग्लैन्ड भेज देता था।

अभी ऊपर मैंने जिन विशेष अध्ययनों का जिक्र किया है, यदि उनकी तुलना बेइन्तहा मेहनत और ध्यान लगाकर काम करने से की जाए तो वे इसकी तुलना में कुछ भी नहीं थे। उस समय तो मैं मेहनत और दिलो-जान से काम करने का पाठ पढ़ रहा था। उस समय मैं जो कुछ पढ़ता या सोचता था उसका सीधा ताल्लुक उस चीज़ से रहता था जो मैं देख चुका था या देखने की सम्भावना थी। मेरी यही आदत इस यात्रा के अगले पाँच बरस तक बरकरार रही। मैं पक्के तौर पर कह सकता हूँ कि इसी प्रशिक्षण की बदौलत मैं विज्ञान में कुछ हाथ पांव मार पाया।

यदि अतीत पर नज़र डालूँ तो मैं कह सकता हूँ कि विज्ञान के प्रति मेरे मोह ने अन्य सभी रुचियों पर विजय पायी। शुरू के दो बरस तक तो निशानेबाजी के लिए मेरा शौक जोर-शोर से बरकरार रहा। अपने संग्रह के लिए सभी पक्षियों और पशुओं को मैं खुद ही मारता था। लेकिन धीरे धीरे बन्दूक और मेरे बीच दूरी बढ़ती गयी, और अंत में यह काम मेरे नौकर ने संभाल लिया, क्योंकि अब यह निशानेबाजी मेरे काम के आड़े आने लगी थी, खासकर किसी इलाके की भूवैज्ञानिक संरचना तैयार करते समय। हालांकि मन के किसी कोने में मैं यह भी महसूस कर रहा था कि किसी चीज़ को देखने और सत्य की कसौटी पर कसने की ताकत शिकारी के काम से ज्यादा है। इस यात्रा के दौरान किये गये कामों से मेरे दिमाग का कितना विकास हुआ था यह इससे स्पष्ट हो जाएगा कि मेरे पिताजी कभी संदेह में कोई काम नहीं निपटाते थे और ललाट शास्त्र में उन्हें कोई रुचि नहीं थी, लेकिन वे बड़ी पैनी नज़र रखते थे, तभी तो समुद्र यात्रा से लौटने के बाद मुझे देखते ही, मेरी बहनों को बुला कर बोले, 'क्यों जी! इसके सिर का तो हुलिया ही बदल गया है।'

और एक बार फिर समुद्र का बुलावा। सितम्बर 11 (1831), को मैं प्लेमाउथ में बीगल पर फिट्ज राय से मिलने गया। वहाँ से श्रूजबेरी गया। अपने पिता और बहनों से लम्बी जुदाई के लिए विदाई ली और चल दिया एक और सफर के लिए। मैं 24 अक्टूबर को प्लेमाउथ पहुँचकर वहीं रहने लगा और 27 दिसम्बर को दुनिया का चक्कर लगाने के लिए यात्रा शुरू करने तक वहीं रहा, क्योंकि भारी अंधड़ों के कारण हमारे जहाज बीगल के दो प्रयास विफल हो चुके थे, और हमारा जहाज वहीं इंग्लैन्ड के समुद्र तट पर लंगर डाले खड़ा रहा। प्लेमाउथ में ये दो महीने बेहद मुश्किल भरे गुज़रे। हालांकि मैं किसी न किसी काम धंधे में लगा ही रहता था। अपने परिवार और मित्रों से लम्बी जुदाई की याद ही मुझे हताश कर देती थी। और मौसम भी अपने रंग दिखा ही रहा था।

मेरी सांस फूल जाती और दिल के आस पास दर्द भी महसूस होता रहता था। दूसरे नौजवानों की तरह मैं भी अपनी सेहत के प्रति लापरवाह रहता था। उस पर तुरा यह भी कि मुझे डॉक्टरी का सतही ज्ञान भी था, तो उसके आधार पर मैंने यह भी मान लिया कि मुझे दिल की बीमारी है। मैंने किसी डाक्टर से सलाह भी नहीं ली क्योंकि मैं पूरी

तरह से मान चुका था कि वह क्या फैसला सुनाने वाला है, यही कि मैं समुद्री यात्रा के काबिल नहीं हूँ, और यहाँ मैं हर खतरा उठाने को कमर कसे बैठा था।

अब मैं अपनी यात्रा के ब्यौरों का और घटनाओं का जिक्र फिर से नहीं करूँगा क्योंकि इन सबको मैं अपने प्रकाशित रोजनामचे में विस्तार से बता चुका हूँ। फिलहाल तो मेरे सामने उष्णकटिबंधीय प्रदेशों की वनस्पतियों की हरियाली मेरे दिमाग पर किसी भी दूसरी चीज़ के मुकाबले ज्यादा गहराई से छायी हुई है। यह हरियाली मैंने पेटागोनिया के विशाल रेगिस्तानों और टियेरा डेल फ्यूगो की वन से ढंकी पर्वतमाला पर देखी। इस दृश्य का मेरे मन पर अमिट प्रभाव है। अपनी मातृभूमि में खड़े नग्न आदिवासी को मैं कभी भूल नहीं सकता। जंगली इलाकों में घुड़सवारी करते हुए या नावों में कई-कई हफ्ते तक जो सफर मैंने किए वे बहुत ही रोचक और रोमांचक थे। उस समय सफर के साथ जुड़ी परेशानियाँ और छोटे-मोटे खतरे ज़रा भी आड़े नहीं आए, और ये छिटपुट घटनाएँ बाद में याद भी नहीं रहीं। मैंने अपने कुछ वैज्ञानिक लेखों में भी इनका काफी उपयोग किया। मिसाल के तौर पर, सेन्ट हेलेना जैसे कुछ द्वीपों की भूवैज्ञानिक संरचना को स्पष्ट करते हुए मूँगा द्वीपों के निर्माण आदि का समाधान किया। यही नहीं, गैलापेगोस द्वीप समूह के बहुत से टापुओं पर पाए जाने वाले पशुओं और पौधों के एकल सम्बन्धों को भी ध्यान में रखा और दक्षिणी अमरीका में पाए जाने वाले जीवों और पौधों पर भी लेख लिखे।

यदि अपने बारे में कहूँ तो किस्सा कोताह यही है कि समूची समुद्री यात्रा के दौरान मैंने खुद को काम में झोंक रखा था, क्योंकि मुझे खोज बीन में आनन्द आता था और प्राकृतिक विज्ञान से जुड़े तथ्यों के विशाल पुंज में कुछ और तथ्य भी जोड़ने की मेरी बलवती इच्छा थी। इतना ही नहीं, वैज्ञानिकों के बीच अपने लिए ठीक-ठाक जगह बना पाना भी मेरी अभिलाषा थी, यह मैं नहीं कह सकता कि मेरी अभिलाषा मेरे सहकर्मियों से अधिक थी या कम।

सेन्ट जैगो का भूविज्ञान बेहद सामान्य होने के बावजूद चकित कर देने वाला था। बहता हुआ लावा सागर की तलहटी में चला आया। इस लावे के साथ ताजा शंखों और मूँगों का चूरा मिलकर जमता चला गया और इनके पकने से सफेद रंग की कठोर चट्टानें बनती चली गयीं। उसके बाद समूचा द्वीप सिर उठा कर ऊपर निकल आया। लेकिन सफेद चट्टान में पड़ी लकीरों ने मुझे एक नए तथा महत्त्वपूर्ण तथ्य से परिचित कराया। वह यह कि ज्वालामुखी के जीवंत होने की अवस्था के दौरान लावा निकल निकल कर क्रेटरों के चारों ओर जमता चला गया। उस समय मेरे मन में यह विचार कौंधा कि मैं जितने देशों भी मैं गया हूँ, वहाँ के भूविज्ञान पर एक किताब लिखूँ। इस विचार ने मुझे रोमांच से भर दिया। यह मेरे लिए अविस्मरणीय क्षण थे। मेरे मन पर आज भी वह छवि जस की तस अंकित है कि लावे से बनी खड़ी चट्टान के नीचे मैं खड़ा था, ऊपर सूरज चमक रहा था, आस पास रेगिस्तानी इलाकों में पाए जाने वाले कुछ पौधे सिर उठाए खड़े थे और मेरे पैरों के पास समुद्री जल में जीवित मूँगे अपनी छटा बिखेर रहे थे। यात्रा के ही दौरान फिट्ज राय ने मुझसे कहा कि मैं अपने कुछ रोजनामचे पढ़कर उन्हें सुनाऊँ। सुनते ही वे बोले कि ये तो भई, छपने चाहिये, और इस तरह से दूसरी पुस्तक का आगाज हो गया।

हमारी यात्रा समाप्त होने को थी। एस्केन्सन पर पड़ाव के दौरान मुझे एक खत मिला, जिसमें मेरी बहनों ने लिखा था कि सेडविक घर आकर पिताजी से मिले थे और उनसे कहा था कि अब मुझे वैज्ञानिकों के बीच जगह मिलना तय ही है। उस समय मैं यह नहीं जान पाया था कि उन्हें मेरी गतिविधियों की जानकारी कैसे मिली होगी। बाद में मैंने सुना (और मुझे भरोसा भी हुआ) कि मैंने कुछ खत हेन्सलो को भी लिखे थे। उन खतों को उन्होंने कैम्ब्रिज की फिलास्फिकल सोसायटी के समक्ष पढ़ा, और उन्हें वहाँ वितरण के लिए छपवाया भी था। मैंने जितने जीवाश्मों का संग्रह किया था, वह भी हेन्सलो को भिजवा दिया था। इस संग्रह ने भी जीवाश्म वैज्ञानिकों को काफी आकर्षित किया था।

इस खत को पढ़कर मैं किसी तरह से एस्केन्सन की पहाड़ियों पर चढ़ कर गया और अपने हथौड़े से उन ज्वालामुखीय चट्टानों को ठकठकाने लगा। इस सबसे इस बात का अंदाजा तो लग ही गया होगा कि मैं कितना महत्वाकांक्षी था। लेकिन मैं इस सत्य को भी स्वीकार करने में संकोच नहीं करूंगा कि आने वाले बरसों में लेयेल और हूकर जैसे साथियों का हाथ मेरी पीठ पर रहा। बाकी आम लोगों की मैंने उतनी परवाह नहीं की। मेरा आशय यह नहीं है कि मेरी किताबों की अनुकूल समीक्षा या खूब बिक्री से मुझे खुशी नहीं होती थी, लेकिन यह खुशी क्षण भंगुर होती थी। पर इतना तो था ही कि प्रसिद्धि पाने के लिए मैं अपने रास्ते से जरा-सा भी डिगा नहीं।

इंग्लैन्ड में वापसी (2 अक्टूबर 1836) के बाद से मेरे विवाह तक (29 जनवरी 1839)

दो बरस और तीन महीने का यह समय काफी उथल-पुथल वाला रहा। हालांकि इस बीच बीमारी के कारण थोड़ा-सा वक्त बरबाद भी हुआ। श्रूजबेरी, मायेर, कैम्ब्रिज और लन्दन के बीच खूब दौड़ भाग करने के बाद मैं 13 दिसम्बर को कैम्ब्रिज में घर लेकर रहने लगा। इस समय तक मेरा सारा संग्रह हेन्सलों के पास रहा। मैंने वहाँ पर तीन महीने बिताए और प्रोफेसर मिलर की सहायता से खनिजों और चट्टानों पर परीक्षणों में जुटा रहा।

इसी बीच मैंने अपना जर्नल ऑफ ट्रेवल्स तैयार करना शुरू कर दिया। यह मेरे यात्रा वृत्तांत जितना कठिन नहीं था। यह जर्नल मैंने बहुत ध्यान से लिखा। मैंने ज्यादा मेहनत इस बात पर की कि अपने रोचक वैज्ञानिक परिणामों का सारांश भी लिखूं। लेयेल के अनुरोध पर मैंने चिली के समुद्र तट पर ज़मीन के उभार के बारे में अपने अवलोकनों का विवरण जिओलोजिकल सोसायटी को भी भिजवाया।

मैंने 7 मार्च 1837 को लन्दन में ग्रेट मार्लबरो स्ट्रीट में एक घर ले लिया और विवाह तक वहीं रहा। इन दो बरसों के दौरान मैंने अपना जर्नल पूरा किया, जिओलॉजिकल सोसायटी में कई लेखों का पाठ किया और जिओलॉजिकल आब्जर्वेशन्स पत्रिका के लिए वृत्तांत तैयार करना शुरू कर दिया। इसके अलावा, जूलॉजी ऑफ दि वायज ऑफ दि बीगल के प्रकाशन की तैयारी में जुट गया। जुलाई में मैंने द ऑरिजिन ऑफ स्पीशेज़ के लिए तथ्यों के संग्रह के

लिए नोट बुक लिखनी शुरू कर दी। इसका उल्लेख मैंने काफी पहले शुरू कर दिया था। इसके बाद अगले बीस वर्ष तक मैंने अपना काम रुकने नहीं दिया।

इन दो बरसों के बीच मैं कुछ सोसायटियों में गया और जिओलॉजिकल सोसायटी के मानद सचिव में रूप में काम भी करता रहा। मैंने लेयेल की मेहनत भी देखी। उनमें एक खासियत यह भी थी कि वे दूसरों के काम के प्रति भी संवेदना रखते थे। इंग्लैन्ड लौटकर मैंने मूँगे की चट्टानों पर अपने विचार जब उन्हें बताए तो उनकी रुचि देखकर मैं चकित भी हुआ और प्रसन्न भी। इससे मेरा हौसला बढ़ा और उनकी सलाह तथा नज़ीर ने मुझ पर काफी असर डाला। इसी समय के आस पास मैं राबर्ट ब्राउन से भी काफी मिला। मैं अक्सर रविवार को नाश्ते पर उनसे बातचीत करने चला जाता था। वे भी अपनी जिज्ञासा और सटीक टिप्पणियों का भरपूर खजाना मेरे सामने खोल देते थे। यह बात अलग है कि उनके प्रश्न बारीक बातों को लेकर होते थे। वे विज्ञान के बड़े या खास प्रश्नों पर विचार विमर्श नहीं करते थे।

इन्हीं दो बरसों के दौरान मैंने मनोरंजन के तौर पर छोटी छोटी अध्ययन यात्राएं भी कीं। इन्हीं में से एक लम्बी यात्रा मैंने ग्लेन राय की यात्रा के समांतर की। इसके वृत्तांत फिलास्फिकल ट्रान्जक्शन में प्रकाशित हुए। यह आलेख एकदम असफल रहा और मैं इसके लिए शर्मसार भी हूँ। दक्षिण अमरीका में भूमि के उठान में समुद्र के योगदान से मैं बहुत प्रभावित हुआ था और इसी का वर्णन मैंने किया था। उसी आधार पर मैंने यह आलेख भी लिखा था, लेकिन मुझे यह विचार त्यागना पड़ा क्योंकि एगासिज ने ग्लेशियर झील सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, और उस समय जानकारी की स्थिति के तहत कोई और वर्णन सम्भव भी नहीं था। मैंने समुद्र की संक्रिया के पक्ष में तर्क दिया, हालांकि मेरी यह भूल मेरे लिए एक सबक भी थी कि कुछ चीज़ों के बारे में विज्ञान पर भरोसा छोड़ना पड़ता है।

ऐसा नहीं था कि मैं सारा दिन विज्ञान पर ही काम करता रहता था। इन्हीं दोनों बरसों में मैंने अलग अलग विषयों पर पुस्तकों का अध्ययन किया। इनमें से कुछ पुस्तकें तत्त्व मीमांसा पर थीं। लेकिन मैं ऐसे विषयों के लायक नहीं था। इस बीच मुझे वर्डस्वर्थ और कॉलरिज के काव्य में काफी आनन्द मिला और मैं फरख के साथ कह सकता हूँ कि मैंने एक्सकर्सन दो बार पढ़ लिया था। इससे पहले मैं मिल्टन के पैराडाइज लॉस्ट को बहुत पसन्द करता था, और बीगल से समुद्र यात्रा करते समय जब हम बीच बीच में अध्ययन यात्राओं पर जाते थे, और कोई एक ही किताब लेनी होती थी तो मिल्टन मेरी पहली पसन्द होते थे।

मेरे विवाह, (जनवरी 29, 1839), और अपर गॉवर स्ट्रीट में रहने से लेकर 14 सितम्बर 1842 को लन्दन छोड़कर डॉउन में बसने तक :

[अपने सुखद वैवाहिक जीवन और अपनी संतानों के बारे में लिखने के बाद, वे लिखते हैं।]

लन्दन में तीन साल और आठ महीने रहने के दौरान मैंने वैज्ञानिक कार्य बहुत कम किया, हालांकि जितनी मेहनत मैंने इस दौरान की थी वह अपने जीवन में इतनी ही समयावधि में फिर कभी नहीं की। इसका कारण बार बार की बीमारी और लम्बी तथा गम्भीर बीमारी का एक झटका लगना रहा। जब मैं थोड़ा खाली होता था तो ज्यादातर समय कोरल रीफ्स पर लगाता था। इसका लेखन मैंने अपनी शादी से पहले शुरू किया था और इसका आखिरी प्रूफ मैंने 6 मई 1842 को पढ़ा। वैसे तो यह पुस्तक छोटी-सी थी, लेकिन इसमें मेरी बीस माह की मेहनत लगी, क्योंकि मुझे प्रशान्त महासागर के द्वीपों पर सभी लेख पढ़ने और कई चार्ट देखने पड़े। इस पुस्तक को कई वैज्ञानिकों ने उच्च स्तरीय बताया और मैं समझता हूँ कि इसमें दिए गए सिद्धान्त अब अपनी जगह बना चुके हैं।

मैंने अपना कोई भी काम इतने तर्कपूर्ण ढंग से शुरू नहीं किया था जितना कि यह, क्योंकि समूचा सिद्धान्त दक्षिण अफ्रीका के पश्चिमी तट पर मूंगे की भित्ति देखने के बाद ही निर्धारित हुआ था। अब जीवित भित्तियों को देखकर इसमें कुछ सत्यापन और संशोधन बाकी थे। पर इसी बीच मैं दक्षिण अमरीका के भू-भाग के सविरामी उठान से वहाँ के समुद्र तट पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कर रहा था। साथ ही, वनों के नष्ट होने और तलछट के जमाव का अध्ययन भी जारी था। इससे मैं प्रेरित हुआ कि अधोगमन के प्रभाव पर भी कुछ लिखूँ, क्योंकि यह अनुमान लगाना आसान था कि मूंगों के ऊपर उठते जाने से तलछट पर मिट्टी जमती चली गयी होगी। इसके लिए मैंने उपरोधी भित्तियों और प्रवाल द्वीप (मूंगे के द्वीप) के निरूपण का सिद्धान्त व्यक्त किया था।

लन्दन में रहने के दौरान मैंने मूंगा भित्तियों के अलावा जिओलोजिकल सोसायटी में इरेटिक बाउल्डर्स ऑफ साउथ अमेरिका, भूकम्प और दि फार्मेशन बाय द एजेन्सी ऑफ अर्थवार्म्स ऑफ माउण्ड पर भी लेख पढ़े। मैं जूलॉजी ऑफ दि वायज ऑफ दि बीगल के प्रकाशन की देखरेख भी कर रहा था। यही नहीं, द ओरिजिन ऑफ स्पीशियल से जुड़े तथ्यों का संकलन भी मैंने रोक नहीं था। जब मैं बीमारी के कारण कुछ और नहीं कर पाता था तो बस यही करता रहता था।

सन 1842 की ग्रीष्म ऋतु में थोड़े अरसे के लिए शरीर में थोड़ी ताकत महसूस की तो नार्थ वेल्स की यात्रा पर निकल पड़ा ताकि यह जान सकूँ कि बड़ी बड़ी घाटियों को पानी से भर देने वाले पुराने ग्लेशियरों का क्या प्रभाव पड़ा। फिलास्फिकल मैगजीन में जो लेख मैंने पढ़ा उस पर एक संक्षिप्त आलेख भी मैंने प्रस्तुत किया। इस यात्रा में किसी पर्वतमाला पर चढ़ने या घूमने का काम मैंने आखिरी बार किया क्योंकि इसके बाद मेरा शरीर इतना मज़बूत नहीं रह गया था कि भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के लिए ज़रूरी दूरियां तय कर सकूँ या पहाड़ों पर चढ़ सकूँ।



लन्दन में जितना जीवन मैंने गुज़ारा, उसके शुरुआती दिनों में शरीर में इतना दम-खम था कि मैं जनरल सोसायटी में जा सकूँ। मैं कई वैज्ञानिकों तथा अन्य सुप्रसिद्ध या अल्प प्रसिद्ध लोगों से मिला। यहां मैं उनमें से कुछ का ज़िक्र करूंगा, हालांकि उनके विषय में ज्यादा कुछ नहीं कहना है।

अपनी शादी के पहले और बाद में मेरा लेयेल् से सबसे ज्यादा मिलना-जुलना रहा। मुझे ऐसा लगता है कि उसका दिमाग काफी सुलझा हुआ था। उसकी स्पष्टतवादिता, सजगता, विवेकशीलता और उसके लेखों में मौलिकता, इन सबसे तो यही प्रकट होता था। मैं भूविज्ञान के बारे में जब भी उसके लेखों के बारे में कोई टीका टिप्पणी कर देता था तो वह तब तक चैन नहीं लेता था जब तक कि सारे मामले को फिर से न देख ले और कई बार मुझे भी पहले के मुकाबले अधिक ध्यान देते हुए देखना पड़ जाता था। वह मेरे सभी सुझावों पर हर सम्भव प्रतिवाद करता और सभी तर्क खत्म हो जाने के बावजूद काफी समय तक संदेह से घिरा रहता था। उसकी दूसरी विशेषता थी, अन्य वैज्ञानिकों के काम के साथ उसकी हार्दिक संवेदना।

बीगल की यात्रा से लौटने के बाद मैंने मूँगा भित्तियों के बारे में अपने विचार उसे बताये। हालांकि मेरे विचार उससे अलग थे, लेकिन जिस मनोयोग से उसने मेरी बातें सुनीं उस पर मैं हैरान था। विज्ञान में उसकी रुचि बड़ी प्रबल थी, और मानव-मात्र की प्रगति के बारे में उसके बड़े नेक विचार थे। वह बड़ा ही दयालु और धार्मिक विश्वासों या कुछेक अविश्वासों को लेकर पूरी तरह से उदार था; लेकिन था वह पक्का आस्तिक और बड़ा ही निष्पक्ष। लैमरिक के विचारों का विरोध करने के कारण उसे बड़ी ख्याति मिली थी। लेकिन बुढ़ापे में उसने डीसेन्ट थ्योरी को अपनाया और अपने चरित्र की इसी विशेषता का परिचय दिया।

एक बार जब मैं उसके साथ इस बात की चर्चा कर रहा था कि भूवैज्ञानिकों का पुराना सम्प्रदाय उसके विचारों से सहमत नहीं है, तो इसी सिलसिले में मैंने कहा था कि, 'क्या ही बेहतर हो कि प्रत्येक वैज्ञानिक साठ साल का होते ही चल बसे, क्योंकि इसके बाद वह हर नए सिद्धान्त का विरोध ही करता रहता है।' यही बात याद कराते हुए उसने मुझसे कहा कि अब उसे जीने की अनुमति दी जा सकती है।

भूविज्ञान अब तक हुए सभी वैज्ञानिकों का जितना ऋणी लेयेल् का है, उतना शायद किसी और का नहीं, ऐसा मेरा मानना है। जिस समय मैं बीगल की यात्रा पर जाने की तैयारी कर रहा था, तो हेन्सलॉ उस समय अन्य भूवैज्ञानिकों की ही तरह से सोपानिक जल-प्रलय में विश्वास करते थे। उन्होंने मुझे सलाह दी थी कि मैं दि प्रिन्सिपल्स का पहला खंड पढ़ लूँ, यह बस, तभी प्रकाशित ही हुआ था। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि उस पुस्तक में बताए विचारों को मैं स्वीकार करूँ, ये ज़रूरी नहीं हैं। लेकिन अब देखें तो कोई भी दि प्रिन्सिपल्स के बारे में कितने अलग विचार व्यक्त करेगा। मुझे याद करके गर्व हो रहा है कि वेरदे अन्तरीप के द्वीप-समूहों में सेन्ट जेगो नामक जगह थी जिसका मैंने पहली बार भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण किया था, और इसी स्थान पर लेयेल् के

विचारों की अद्वितीय श्रेष्ठता सिद्ध हो गयी थी। इस तरह के विचारों का समर्थन किसी और किताब में मुझे नहीं मिला।

लेयेल की कृतियों का जोरदार प्रभाव फ्रांस और इंग्लैंड में विज्ञान की अलग अलग प्रगति पर साफ तौर पर देखा जा सकता है। इस समय एली डी ब्यूमान्ट की मूल कल्पना व्यक्त हुई थी, क्रेटर्स ऑफ एलिवेशन एन्ड लाइन्स ऑफ एलिवेशन (जिसके लिए सेडविक ने जिओलॉजिकल सोसायटी में तारीफों के पुल बांध दिए थे) में। आज इसे लगभग भुला दिया गया है, इसका श्रेय भी लेयेल को ही जाता है।

मेरा परिचय राबर्ट ब्राउन से भी था। होम्बाल्ड उन्हें प्रिन्सेप्स बोटानिकोरम की प्रतिकृति कहते थे। अपने अन्वेषणों की बारीकी और परिशुद्धता के लिए उनका बहुत नाम था। उनका ज्ञान बहुत ही व्यापक था, और सब कुछ उनके साथ ही काल के गर्त में समा गया, क्योंकि इस बात से वे बहुत डरते थे कि कहीं कोई गलती न हो जाए। उन्होंने मुझ पर अपने ज्ञान की वर्षा बिना भेदभाव के की, लेकिन कई बातों में वे मुझसे ईर्ष्या भी करते थे। बीगल की यात्रा से पहले मैं तीन बार उनसे मिलने गया। एक बार उन्होंने मुझे सूक्ष्मदर्शी के नीचे कुछ दिखाया और पूछा कि मैंने क्या देखा। मैंने बता दिया कि क्या देखा और मुझे पूरा विश्वास है कि किसी वनस्पति कोशिका में प्राण द्रव्य की अनोखी धाराएं बह रही थीं। जब मैंने पूछा कि यह क्या था, तो वे बोले, 'यह मेरा छोटा-सा रहस्य है।'

उनके क्रियाकलापों में भी उदारता झलकती थी। अपने बुढ़ापे में, जब वे दौड़-भाग के लायक नहीं रह गए थे तो भी (हूकर ने मुझे बताया था) वे काफी दूर रहने वाले अपने नौकर के पास जाकर (जो इन्हीं के सहारे था) उसका हालचाल पूछते और उसे कुछ न कुछ पढ़कर सुनाते। यह किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक में हार्दिक कंगाली या ईर्ष्या पैदा करने के लिए काफी है।

मैं कुछ ख्याति प्राप्त लोगों का भी जिक्र करूंगा जिनसे मैं यदा-कदा मिलता रहता था, लेकिन उन सबके बारे में ज्यादा कुछ लिख न पाऊंगा। मेरे मन में सर जे हर्शेल के प्रति अगाध श्रद्धा थी। आशा अन्तरीप पर उनके सुन्दर घर और बाद में उनके लन्दन स्थित घर पर भोजन करके मैं अति प्रसन्न होता था। वे ज्यादा नहीं बोलते थे, लेकिन जितना भी बोलते थे वह सब सुनने लायक होता था।

एक बार मैं नाश्ते के समय सर आर मर्चिसन के घर पर मैं मशहूर हम्बोल्ट से भी मिला। उन्होंने भी मुझसे मिलने की इच्छा जाहिर करके मुझे इज्जत बखशी थे। मैं उन जैसे महान व्यक्ति से मिल कर थोड़ा निराश हुआ। शायद मैं कुछ ज्यादा ही उम्मीदें लगा बैठा था। अपनी इस मुलाकात के बारे में मुझे ज्यादा कुछ याद नहीं, बस इतनी ही बात याद है कि हम्बोल्ट बहुत खुश-मिजाज़ और बातूनी थे।

इससे मुझे याद आती है बंकल की, जिनसे मैं हेन्सलो वेजबुड के घर पर मिला था। बंकल ने तथ्यों के संग्रह का जो तरीका अपनाया हुआ था, उससे मैं काफी प्रभावित हुआ। उन्होंने मुझे बताया कि जो भी किताब वे पढ़ते थे, उसे खरीद लेते थे और हरेक के साथ उन तथ्यों की सूची बना कर लगा देते थे जो उन्हें बाद में उपयोग में आने लायक लगते थे। उन्हें यहाँ तक याद रहता था कि किस किताब में उन्होंने क्या पढ़ा था। मैंने उनसे पूछा कि वे यह पता कैसे लगा लेते हैं कि कोई तथ्य बाद में उपयोगी रहेगा। इस पर उनका जवाब था कि उन्हें पता नहीं, लेकिन कोई नैसर्गिक प्रवृत्ति है जो उन्हें रास्ता दिखाती है। सूची बनाने की इस आदत के कारण वे सभी प्रकार के विषयों पर इतने उदाहरणों का उल्लेख कर देते थे कि हैरानी होती थी। हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन में यह देखा जा सकता है। यह किताब मुझे काफी रोचक लगी। मैंने इसे दो बार पढ़ा, लेकिन उन्होंने जो साधारणीकरण किया है, उसकी उपयोगिता पर मुझे संदेह है। बंकल अच्छे वक्ता थे। मैंने उनके व्याख्यान भी सुने थे, और मैं मंत्र मुग्ध-सा सुनता रह गया था, क्योंकि व्याख्यान में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। इसी बीच मिसेज फेरेर ने गाना शुरू कर दिया था, और मैं उनका गीत सुनने के लिए चल दिया। जब मैं चला गया तो वहीं बैठे अपने दोस्त से वे बोले (जिसे मेरे भाई ने सुन लिया) कि, 'मिस्टर डार्विन की किताबें उनकी बातचीत से कहीं बेहतर हैं।'

अन्य महान साहित्यकारों में से एक बार मैं डीन मिलमैन के घर पर सिडनी स्मिथ से मिला। उनका बोला हुआ हर शब्द अकथनीय रूप से मनोरंजक था। शायद यह आनन्दित होने के कारण था। वे बुजुर्गवार लेडी कोर्क के बारे में बात कर रहे थे। उन्होंने बताया कि वह एक बार धर्मार्थ आयोजन में व्याख्यान दे रहे थे, और उस व्याख्यान से प्रभावित होकर उस महिला ने अपनी दोस्त से एक गिन्नी उधार लेकर कटोरे में डाली। फिर वे बोले, 'आम तौर पर यही माना जाता है कि इन बुजुर्गवार लेडी कोर्क पर अभी तक उसकी नज़र नहीं पड़ी।' और यह बात उन्होंने इस ढंग से कही कि वहां मौजूद हरेक को तुरन्त यह पता चल गया कि उस बुजुर्ग औरत पर अभी शैतान की नज़र नहीं पड़ी है। उन्होंने यह किस ढंग से किया मुझे नहीं मालूम। इसी प्रकार मैं एक बार लार्ड स्टैनहोप (इतिहासकार) के घर पर मैकाले से मिला। वहाँ भोजन पर एक और व्यक्ति भी था। मैंने वहां मैकाले की बातचीत सुनी और वे बातें मुझे स्वीकार्य लगीं। वह बहुत बात नहीं करते थे। इस प्रकार के व्यक्ति अधिक नहीं बोलते। वे तो दूसरों को बार बार मौका दे रहे थे कि वे बातचीत का सूत्र अपने हाथ में भी लें, और उनकी अनुमति से दूसरे यही कर भी रहे थे।

लार्ड स्टैनहोप ने एक बार मुझे मैकाले की स्मरणशक्ति की सम्पूर्णता और परिशुद्धता का प्रमाण दिया था। लार्ड स्टैनहोप के ही घर पर मैं उनके इतिहासकार और अन्य साहित्यकार मित्रों से भी मिला। इन्हीं में मॉटले और ग्रोटे भी थे। नाशते पानी के बाद मैं ग्रोटे के साथ शेवेनिंग पार्क के पास तकरीबन एक घंटे तक घूमता रहा। मैं ग्रोटे की बातचीत तथा उसकी सरलता से बहुत प्रभावित हुआ। उसके आचरण में बनावटीपन तो था ही नहीं।

बहुत पहले मैंने इन्हीं इतिहासकार के पिता बुजुर्ग अर्ल के साथ भी भोजन किया था। वे बड़े अजीब व्यक्ति थे, लेकिन जितना भी मैंने उन्हें जाना था उसके आधार पर मैं उन्हें बहुत पसन्द करता था। वे स्पष्टवादी, मज़े लेने वाले और खुशमिजाज़ थे। उनकी शक्ल सूरत काफी अलग थी। बादामी रंग का शरीर और ऊपर से नीचे तक

बादामी रंग के कपड़ों में ढंके थे वे। जो दूसरों को अविश्वसनीय लगता था, उन्हें उस पर भी भरोसा था। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा था कि तुम यह भू-विज्ञान और प्राणि-विज्ञान की खुराफात को छोड़ कर गुह्य-ज्ञान की साधना क्यों नहीं करते? मेरे इतिहासकार मित्र लार्ड मेहोन उनकी यह बात सुनकर हतप्रभ रह गए और उनकी प्रसन्नवदना पत्नी तो और भी परेशान हो गयी।

इन लोगों में आखिरी नाम है कार्लाइल का, जिनसे मैं अपने भाई के घर पर भी आए। उनकी बातें बड़ी सरस और रोचक होती थीं। ठीक ऐसा ही लेखन भी था उनका; लेकिन कई बार वे विषय को काफी लम्बा खींच देते थे। एक बार मेरे भाई के घर पर डिनर में खूब मज़ा आया। वहाँ अन्य लोगों के अलावा बैबेज और लेयेल भी थे। दोनों आपस में बातें कर रहे थे। डिनर के दौरान कार्लाइल ने मौन की महानता पर जोरदार तकरीर करते हुए लगभग सभी को चुप ही रखा। डिनर के बाद बैबेज ने बड़े ही विचित्र रूप से कार्लाइल का धन्यवाद किया कि उन्होंने मौन के बारे में बड़ा ही रोचक व्याख्यान दिया।

कार्लाइल ने लगभग सभी का मज़ाक उड़ाया। एक दिन मेरे घर पर उन्होंने ग़ोटे लिखित हिस्ट्री के लिए कहा, 'एक बदबूदार दलदल जिसमें कुछ भी उपयोगी नहीं।' उनकी रेमिनिसेन्सेस प्रकाशित होने तक मैं यही समझता था कि उनके उपहास महज मज़ाक होंगे, लेकिन अब मुझे संदेह होने लगा था। उनकी अभिव्यक्तियाँ किसी निराश और हताश मन को प्रकट करती थीं, लेकिन वे बहुत दयालु भी थे और अपने छतफाड़ ठहाकों के लिए बदनाम थे। मुझे विश्वास है कि उनकी दयालुता वास्तविक थी जिसमें ज़रा भी ईर्ष्या नहीं थी। वस्तुओं और इन्सानों का चित्र बनाने में उनकी महारथ पर कोई शक नहीं कर सकता था। चित्रकारी में वे मैकाले से बहुत आगे थे। इन्सानों की ये तस्वीरें असल थीं या नहीं यह प्रश्न अलग है।

वे इन्सान के ज़ेहन पर बड़े ही ताकतवर तरीके से सच्चाई का असर डालते थे। दूसरी तरफ गुलामी प्रथा के बारे में उनके विचार बड़े ही घृणास्पद थे। उनकी नज़र में तो जिसकी लाठी उसकी भैंस। मुझे लगता है, उनकी विचार धारा बड़ी संकीर्ण थी। यदि उनके द्वारा तिरस्कृत विज्ञान की सभी शाखाओं को अलग कर दिया जाए तो भी। यह मेरे लिए हैरत अंगेज बात थी कि किंग्सले ने उन्हें उच्चस्तरीय विज्ञान के लिए एकदम सही व्यक्ति बताया था। वह इस विचार को हंसी में उड़ा देते थे कि व्हीवेल जैसे गणितज्ञ भी प्रकाश के बारे में गोयथे के दृष्टिकोण पर कुछ विचार कर पाएंगे, जबकि मैं मानता था कि ऐसा हो सकता है। उनके विचार से यह बड़ा ही हास्यास्पद था कि कोई इस बात पर ध्यान दे कि कोई हिमनद तेजी से आगे बढ़ा या धीरे धीरे या फिर हिला भी नहीं। जहां तक मैं विचार करता हूँ, तो मुझे वैज्ञानिक शोध को लेकर इतने बीमार दिमाग का कोई आदमी नहीं मिला। लन्दन में रहने के दौरान मैं विभिन्न वैज्ञानिक सोसायटियों की सभाओं में जितना जा सकता था गया, और जिओलॉजिकल सोसायटी के सचिव के रूप में भी काम किया। लेकिन इस दौड़-भाग ने और आर्डिनरी सोसायटी ने मेरी सेहत पर इतना उल्टा असर किया कि हमें शहर छोड़ कर ग्रामीण इलाके में बसना पड़ा। इसे हम दोनों ने स्वीकार किया और इस पर हमें कभी पछतावा भी नहीं हुआ।

[शीर्ष पर जाएँ](#)

## आत्मकथा चार्ल्स डार्विन

अनुवाद - सूरज प्रकाश

### [अनुक्रम](#)

### अध्याय 2

[पीछे](#)

[आगे](#)

### डाउन में घर - 14 सितम्बर 1842 से लेकर वर्तमान 1876 तक

सर्रे और दूसरे स्थानों पर काफी खोजबीन के बाद हमें यह घर मिला और हमने खरीद भी लिया। चाक मिट्टी की बहुतायत वाले इलाके में पायी जाने वाली हरियाली चारों ओर थी, और मिडलैन्ड इलाके में जिस वातावरण का मैं आदी था, उससे अलग माहौल था, तो भी उस स्थान की अत्यधिक शान्ति और नैसर्गिकता से मैं अभिभूत था। जर्मन पत्रिकाओं ने मेरे घर के लिए लिखा था कि वहाँ केवल टट्टू ही पहुंच सकते थे, लेकिन मेरा घर इतने एकान्त और दुर्गम स्थान पर भी नहीं था। हम कितनी अच्छी जगह रह रहे थे इसका बेहतर जवाब हमारी संतानें दे सकती हैं, कि वहाँ बार बार जाना और पहुंचना कितना आसान था।

जितने एकान्त में हम रह रहे थे, कुछ लोग उससे भी ज्यादा एकान्त में जीवन बिताते हैं। फिर भी अपने रिश्तेदारों के घर और समुद्र किनारे या फिर एकाध और जगह जाने के अलावा हम कहीं नहीं गए। यहां निवास के पहले दौर में हम थोड़ा-बहुत सोसायटी में जाते थे और कुछ दोस्तों को बुला लेते थे। मेरी सेहत खराब रहती थी, मुझे बार बार दौरे पड़ते। भयंकर कंपकंपी होती और कई बार उल्टियां शुरू हो जाती थीं। इसलिए मैं कई बरस तक डिनर पार्टियों से दूर रहा, और इस तरह कई चीजों से वंचित भी रहा, क्योंकि ये पार्टियां मुझमें जोश भर देती थीं। इस कारण से मैं अपने घर पर भी बहुत कम वैज्ञानिक सभाएं करा सका।

सारी ज़िन्दगी मेरी खुशी का कारण और एकमात्र रोजगार वैज्ञानिक लेखन ही रहा, और मैं ऐसे काम में कुछ इस तरह से डूबता था कि समय का भान ही नहीं रहता था। यही नहीं, मैं अपनी तकलीफ भी भूल जाता था। शेष बचे जीवन के लिए कुछ लिखने को नहीं, हां इतना ज़रूर है कि मेरी कुछ किताबों का प्रकाशन उल्लेखनीय है। मैं यह ज़रूर बताऊंगा कि मेरी कुछ किताबों की रूपरेखा कैसे बनी।

मेरे विभिन्न प्रकाशन : सन 1844 के पहले भाग में मेरे संस्मरण प्रकाशित हुए थे जो बीगल की यात्रा के दौरान देखे गए ज्वालामुखीय द्वीपों के बारे में थे। सन 1845 में काफी मेहनत करके मैंने जर्नल ऑफ रिसर्च के नए संस्करण का संशोधन किया। पहले यह 1839 में फिट्ज राय के लेखन के साथ प्रकाशित हो चुका था। मेरी इस प्रथम साहित्यिक कृति की सफलता मुझमें मेरी ही अन्य पुस्तकों के मुकाबले अधिक गर्व का संचार कर देती है। आज भी इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमरीका में इसकी काफी बिक्री होती है, और जर्मन में इसका दो बार अनुवाद तो हुआ ही, फ्रेंच तथा अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्रकाशित हुए। यात्रा वृत्तांत, खासकर वैज्ञानिक कोटि

की पुस्तक के प्रथम प्रकाशन के इतने दिन बाद भी ऐसी बिक्री आश्चर्यजनक है। इंग्लैन्ड में दूसरे संस्करण की दस हजार प्रतियां बिक गयीं। सन 1846 में मेरी कृति जिओलॉजिकल आब्जर्वेशन्स ऑन साउथ अमेरिका प्रकाशित हुई। मैं हमेशा एक डायरी लिखता था और उसमें यह दर्ज है कि मेरी तीनों जिओलॉजिकल पुस्तकों (कोरल रीफ्स सहित) में साढ़े चार बरस की मेहनत लगी; और इंग्लैन्ड लौटे हुए मुझे दस बरस हो चुके हैं। कितना ही समय मैंने बीमारी में गंवाया। इन तीनों किताबों के बारे में मुझे और कुछ नहीं कहना। हां, इनमें से एक का नया संस्करण आ रहा है, इसकी हैरानी जरूर है।

अक्टूबर 1846 में मैं 'सिरीपेडिया' (जलयान की तली में चिपके रहने वाले घोंघे) पर काम कर रहा था। चिली के समुद्र तट पर मुझे इसकी बड़ी ही अजीब किस्म मिली। यह कान्कोलेपास के खोल में घुसा हुआ था, और यह दूसरे 'सिरीपेडिया' से इतना अलग था कि मुझे इसके लिए नया अनुक्रम बनाना पड़ा। बाद में पुर्तगाल के समुद्र तटों पर भी इसी प्रकार के समवर्गी शंख मिले। इस नए घोंघे की संरचना को समझने के लिए मुझे कई सामान्य प्रकार के घोंघों की चीरफाड़ करनी पड़ी और इससे मैंने क्रमशः एक नया समूह ही बना डाला। आने वाले आठ बरस तक मैं इसी विषय पर जी जान से जुटा रहा और अन्ततः दो मोटे खंड प्रकाशित कराए, जिनमें सभी जीवित प्रजातियों का विवरण था और दो छोटे प्रकाशन विलुप्त प्रजातियों के बारे में थे। मुझे संदेह नहीं कि सर ई लेट्टन बुलवर ने अपने एक उपन्यास में जिस प्रोफेसर लॉग का जिक्र किया है, वह मैं ही हूं। उपन्यास का प्रोफेसर भी चिपकू घोंघों के बारे में पुस्तकों के दो खंड लिखता है।

हालांकि मैं इस काम पर आठ बरस तक लगा रहा, लेकिन डायरी में मैंने बताया है कि दो बरस तो बीमारी की भेंट चढ़ गए। बीमारी के ही चलते मैंने 1848 में कुछ माह के लिए मेलबर्न में जाकर जलचिकित्सा से इलाज कराया, जिससे मुझे काफी फायदा भी हुआ। इसके बाद घर लौटते ही मैंने काम संभाल लिया। मेरी सेहत इतनी खराब थी कि 13 नवम्बर 1848 को पिताजी का देहान्त होने पर उनको दफनाने या बाद में वसीयत का हक लेने भी नहीं जा सका।

मैं समझता हूँ कि 'सिरीपेडिया' के बारे में मैंने जो अध्ययन किया वह काफी मूल्यवान है, क्योंकि इसमें इस घोंघे के विभिन्न अंगों की सजातीयता का उल्लेख है। मैंने घोंघे के खोल बनाने वाले अंगों को खोजा, हालांकि खोल बनाने वाली ग्रन्थियों के बारे में मैंने बहुत बड़ी गलती की थी, और अन्ततः मैंने सिद्ध किया था कि घोंघों की कुछ नस्लों में सूक्ष्म नरों की विद्यमानता उभयलिंगियों की अनुपूरक और उन पर परजीवी होती है। मेरी अंतिम खोज की पूरी तरह से पुष्टि हो चुकी है, हालांकि एक समय ऐसा भी था जब एक जर्मन लेखक ने इस समूची खोज के बारे में कहा था कि यह सब मेरी कल्पना का विलास है। इस घोंघे की इतनी ज्यादा और अलग अलग प्रजातियां हैं कि सभी का वर्गीकरण करना बहुत कठिन है। मेरा यह काम उस समय मेरे बहुत काम आया जब मैंने 'ऑरिजिन ऑफ स्पीशेज' में प्राकृतिक वर्गीकरण पर विचार विमर्श प्रस्तुत किया। इस सबके बावजूद मुझे संदेह है कि इस काम में क्या इतना समय लगाना ठीक रहा।

सितम्बर 1854 से मैंने अपना सारा समय अपने नोट्स के ढेर को व्यवस्थित करने में लगाया, साथ ही जीव प्रजातियों की काया पलट के बारे में भी मैंने ध्यान दिया और कुछ प्रयोग भी किए। बीगल की यात्रा के दौरान मैंने पेम्पीयन संघटना के जीवाश्म खोजे थे, जो इस समय पाए जाने वाले आर्माडिलोस की भांति कठोर खाल से ढंके होते थे; दूसरी बात यह कि उसी महाद्वीप पर जैसे जैसे हम दक्षिण की ओर बढ़े तो बड़ी ही निकट सजातीयता वाले जीव एक दूसरे का प्रतिस्थापन करते दिखाई दिए। और तीसरी बात यह कि दक्षिण अमरीकी लक्षणों के मुताबिक गेलापेगोस द्वीप समूह के अधिकांश जीव जन्तु अलग ही थे। यही नहीं, प्रत्येक द्वीप पर वे अपने ही समूह के जीवों से थोड़ा-सा अलग थे; जबकि इनमें भूवैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी द्वीप बहुत प्राचीन नहीं था।

यह तो स्पष्ट ही एक प्रकार के और इसी तरह के अन्य तथ्यों की व्याख्या केवल इसी प्रत्याशा के आधार पर की जा सकती है कि जीव प्रजातियां धीरे धीरे बदलती चली जाती हैं और फिर इसी विषय ने मुझे विचलित किया। लेकिन साथ-साथ यह भी स्पष्ट था कि प्रत्येक प्रकार का जीव अपने जीवन की परिस्थितियों के प्रति बड़े ही सुन्दर ढंग से अनुकूलित होता है। ऐसे असंख्य मामले दिखाई देंगे, लेकिन इसमें परिस्थितियों या जीव की इच्छा (खासकर पौधों के बारे में) का कोई योगदान नहीं होता है। उदाहरण के लिए कठफोड़वा या पेड़ पर चढ़ने वाले मेंढक या कांटों या पिच्छपर्ण की सहायता से दूर-दूर तक पहुंचने वाले बीज। मैं इस प्रकार की अनुकूलताओं से हमेशा ही प्रभावित हुआ और मुझे लगता है कि जब तक इनकी व्याख्या नहीं हो जाती है अप्रत्यक्ष प्रमाणों से यह सिद्ध करना कि जीव प्रजातियों में परिवर्तन हुए हैं, निरर्थक प्रयास ही कहा जाएगा।

इंग्लैन्ड लौटने के बाद मुझे यह लगा कि भूविज्ञान में लेयेल के उदाहरण का अनुसरण करने और घरेलू या प्राकृतिक वातावरण में जीव जन्तुओं और पेड़ पौधों में बदलाव के बारे में जरा-सा भी सम्बन्ध रखने वाले सभी तथ्यों का संग्रह करने के बाद ही समूचे विषय पर शायद कुछ रोशनी पड़ सके। मेरी पहली नोटबुक जुलाई 1837 में शुरू हुई। मैंने पूरी तरह से बेकोनियन सिद्धान्तों पर कार्य करना शुरू किया और बिना किसी नियम को अपनाए बड़े पैमाने पर तथ्यों का संग्रह करता रहा। इसमें मैंने पालतू पशुओं में प्रजनन पर अधिक ध्यान दिया। इसके लिए मुद्रित पूछताछ सामग्री एकत्र करता था। कुशल प्रजनन कराने वालों और मालियों से बातचीत करता और खूब पढ़ता था। जिन किताबों को मैंने पढ़ा और उनमें से तथ्यों का संग्रह किया, उनकी सूची और जर्नलों तथा ट्रंजक्शन्स की समूची श्रृंखला पर नज़र डालता हूं तो अपनी मेहनत पर मुझे भी आश्चर्य होता है। जल्द ही मुझे यह आभास हो गया कि जानवरों और पौधों की उपयोगी नस्ल तैयार करने में मानव की सफलता की महत्त्वपूर्ण कुंजी है प्रजातियों का सही चयन। लेकिन प्रजातियों का यह चयन प्राकृतिक वातावरण में रहने वाले जीव जन्तुओं में किस तरह होता होगा। कुछ समय तक यह तथ्य मेरे लिए रहस्य बना रहा।

मैंने पन्द्रह महीने बाद अक्टूबर 1838 में सूत्रबद्ध रूप से पूछताछ शुरू की। मैंने मनोरंजन के लिए माल्थस लिखित 'दि पॉपुलेशन' भी पढ़ा और जीव जन्तुओं तथा पौधों की आदतों पर लम्बे समय से लगातार ध्यान देते हुए ज़िन्दा रहने के संघर्ष की प्रशंसा भी करने लगा। इसी बीच मुझे अचानक ख्याल आया कि इन परिस्थितियों में अनुकूल विभेदों को संरक्षित करने और प्रतिकूल को नष्ट करने की प्रवृत्ति रहती है। इसके परिणामस्वरूप नई नस्ल का जन्म होता है। यहां आकर मुझे एक नियम मिला जिसके अनुसार मैं काम कर सकता था, लेकिन साथ ही मैं पूर्वाग्रहों से बचना चाहता था, इसलिए मैंने यह भी फैसला किया कि कुछ समय तक इसके बारे में लेशमात्र भी नहीं लिखूंगा। जून 1842 में मैंने अपने सिद्धान्तों का सारांश लिखने की शुरुआत की और लगभग 35 पृष्ठ पेन्सिल से लिखे; और 1844 की गरमियों तक मैंने 230 पृष्ठ लिख लिए। इसके बाद मैंने इनकी साफ साफ नकल तैयार की जो अभी तक मेरे पास है।

लेकिन उस समय मैंने एक महत्त्वपूर्ण समस्या की अनदेखी कर दी थी, और यह मेरे लिए अचरज की बात है, क्योंकि कोलम्बस और उसके अण्डे की कहानी वाली बात अलग थी, यहां मैंने अपनी समस्या और उसके समाधान दोनों की ही अनदेखी कर दी थी। समस्या यह थी कि जैसे जैसे संपरिवर्तन होता है तो एक ही वंशमूल के जीवों के लक्षणों में अन्तर आना शुरू हो जाता है। वे बड़े ही विशाल स्तर पर बंटते चले गए हैं। यह विभाजन इस रीति में भी प्रकट हो जाता है जिसके अनुसार सभी नस्लों को प्रजातियों, प्रजातियों को परिवारों, परिवारों को उप विभाजनों और इसी प्रकार आगे वर्गीकृत कर दिया गया है। मैं सड़क पर आज भी उस स्थान को भूला नहीं हूं, जहां पर मैं अपनी टमटम में बैठा था और अचानक ही मुझे इसका समाधान सूझ गया। यह बात डाउन आने के काफी बाद की है। मेरे मतानुसार समाधान यही है कि प्रकृति की गृहस्थी में सभी प्रमुख और वृद्धिशील नस्लों की



संपरिवर्तित संततियां अनेक और अत्यधिक विभेदित स्थानों के अनुसार अपने आपको ढालती जाती हैं।

सन 1856 के प्रारम्भ में ही लेयेल ने मुझे सलाह दी कि मैं अपने दृष्टिकोण को विस्तारपूर्वक लिख डालूं, और मैंने तुरन्त ही तीन या चार गुणा बड़े पैमाने पर लेखन शुरू कर दिया जो मेरी पुस्तक दि ऑरिजिन ऑफ स्पीशेज में भी दिखाई देगा। तो भी जितनी सामग्री मैंने बटोरी थी, उसका सारांश था इसमें। और इस रूप में मैं केवल आधा कार्य ही प्रस्तुत कर पाया। लेकिन मेरी योजना धरी रह गयी क्योंकि 1858 की गर्मियों की शुरुआत में ही मलय द्वीप समूह से मिस्टर वैलेस ने 'आन दि टेन्डेन्सी ऑफ वैरायटीज टू डिपार्ट इन्डैफिनेटली फ्रॉम दि ऑरिजनल टाइप,' विषय पर एक निबन्ध भेजा। इस निबन्ध में वही सिद्धान्त थे जिनकी मैंने रूपरेखा बनायी थी। मिस्टर वैलेस ने लिखा था कि यदि मैं उनके निबन्ध को सही समझूं तो लेयेल के अवलोकन हेतु भिजवा दूं।

मैंने जर्नल ऑफ दि प्रोसीडिंग्स ऑफ दि लिन्नेयन सोसायटी, 1858, पृष्ठ 145 पर उन परिस्थितियों का जिक्र किया है, जिनके कारण मैंने लेयेल और हूकर के इस अनुरोध को माना था कि मैं अपने संस्मरण वृत्तांत को 5 सितम्बर 1857 को एसा ग्रे के पत्र सहित भेजूं और वे भी वैलेस के निबन्ध के साथ ही छपें। पहले तो मैं सहमति देने का इच्छुक ही नहीं था, मुझे लग रहा था कि मिस्टर वैलेस मेरे इस काम को अन्यायपूर्ण मानेंगे, क्योंकि मैं नहीं जानता था कि उनकी मनोवृत्ति कितनी उदार और दयालुतापूर्ण है। मेरे संस्मरण वृत्तांत और एसा ग्रे को लिखा पत्र दोनों ही को छपवाने का अभिप्राय तो था ही नहीं, और ये बहुत बेकार ढंग से लिखे हुए भी थे। दूसरी ओर मिस्टर वैलेस का निबन्ध बेहतरीन अभिव्यक्ति और स्पष्टता के साथ लिखा हुआ था। इसके बावजूद हमारे संयुक्त प्रकाशन ने बहुत कम लोगों का ध्यान आकर्षित किया। इसके बारे में डबलिन के प्रोफेसर हॉटन ने ही एकमात्र समीक्षा प्रकाशित करायी थी, और कुल मिलाकर उनका फैसला यही था कि उन आलेखों में जो कुछ नया था वह असत्य था और जो कुछ सत्य था वह पुराना था। इससे यही सिद्ध होता है कि किसी भी नए दृष्टिकोण की व्याख्या काफी विशद होनी चाहिए ताकि उस पर लोगों का ध्यान भी जाए।

लेयेल और हूकर के काफी कहने पर सितम्बर 1858 में मैंने जीव प्रजातियों में तत्त्व परिवर्तन पर एक पुस्तक लिखने की तैयारी की। लेकिन सेहत ने बीच बीच में धोखा दिया। इस कारण मुझे मूर पार्क स्थित डॉक्टर लेन के सुन्दर जल चिकित्सा केन्द्र में भी जाना पड़ा। मैंने अपने वृत्तांत को 1856 में बड़े पैमाने पर शुरू किया था और अपनी पुस्तक को कुछ छोटा आकार देते हुए पूरा कर लिया। इसमें मुझे तेरह महीने और दस दिन मेहनत करनी पड़ी। नवम्बर 1859 में इसका प्रकाशन दि ऑरिजन ऑफ स्पीशेज के नाम से हुआ। यद्यपि बाद के संस्करणों में इसमें काफी कुछ जुड़ता गया और संशोधन भी हुए लेकिन पुस्तक का मूलरूप बरकरार रहा।

निःसन्देह यह मेरे जीवन का प्रमुख कार्य रहा। यह पुस्तक प्रारम्भ से ही सफल रही। पहले संस्करण में छपी सभी 1250 प्रतियाँ पहले ही दिन बिक गयीं। इसके बाद जल्द ही दूसरे संस्करण की 3000 प्रतियाँ भी बिक गयीं। अब तक (1876) तक इंग्लैन्ड में इसकी सोलह हजार प्रतियाँ बिक चुकी हैं, और पुस्तक की जटिलता को देखते हुए यह संख्या काफी बड़ी है। इसका अनुवाद यूरोप की लगभग सभी जुबानों में हुआ, और स्पैनिश, बोहेमियन, पोलिश तथा रूसी भाषाओं में भी यह पुस्तक छपी। मिस बर्ड का कहना था कि इसका अनुवाद जापानी में हुआ और वहां भी काफी पढ़ी गयी। यही नहीं, हिब्रू भाषा में भी एक निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसमें यह कहा गया था कि यह सिद्धान्त तो ओल्ड टेस्टामेन्ट में भी है। इसकी समीक्षा भी जम कर हुई। ऐसा मुझे इसलिए मालूम है कि दि ऑरिजिन और मेरी अन्य किताबों के बारे में जो समीक्षाएं प्रकाशित होती थीं, उनको मैं एकत्र कर लेता था। कुल समीक्षाओं की संख्या (अखबारों में छपी समीक्षाएं शामिल नहीं) 265 थी। बाद में मैंने यह काम छोड़ दिया, क्योंकि इसका कोई उपयोग लग नहीं रहा था। इस विषय पर अलग से अनेक निबन्ध और पुस्तकें भी छपीं, और जर्मनी में प्रतिवर्ष या हर दूसरे वर्ष डार्विनवाद पर पुस्तक या ग्रन्थसूची प्रकाशित होती थी।

मेरा विचार है कि दि ऑरिजिन की सफलता का श्रेय काफी हद तक दो संक्षिप्त रूपरेखाओं को जाता है जो मैंने काफी पहले लिखी थी। और उसके बाद काफी बड़ी तैयारी के साथ लिखी पाण्डुलिपि को जाता है, जो अपने आप में सारांश थी। इन उपायों से मैं अधिक प्रबल तथ्यों और निष्कर्षों का चयन करने लायक बना। विगत कई वर्ष तक मैंने एक स्वर्णिम नियम अपनाए रखा। वह यह कि जब भी मैं अपना कोई तथ्य प्रकाशित करता और जैसे ही कोई ऐसा विचार मेरे मन में आता जो उस सामान्य परिणाम का विरोधी होता तो मैं बिना नागा फौरन ही उसे याददाश्त के लिए लिख लेता था, क्योंकि अपने अनुभव से मैंने जाना था कि विरोधी तथ्य और विचार याददाश्त में से जल्दी निकल जाते हैं। इस आदत के चलते मेरे दृष्टिकोणों के विरोध में बहुत कम आपत्तियाँ हुईं जिन पर मैंने ध्यान न दिया हो या जिनका उत्तर न दिया हो।

कई बार यह कहा जाता है कि दि ऑरिजिन की सफलता से यह सिद्ध हो जाता है कि, 'इस विषय पर काफी कानाफूसी हुई,' या 'लोगों का मन इसके लिए तैयार किया गया था।' लेकिन मैं इसे पूर्ण सत्य नहीं मानता, क्योंकि मैंने किसी भी मौके पर एक भी प्रकृतिवादी को इसकी भनक नहीं लगने दी, और किसी ऐसे व्यक्ति से मेरी भेंट भी नहीं हुई जो नस्लों के स्थायित्व के बारे में तनिक भी संदेह करता रहा हो। यहां तक कि लेयेल और हूकर जो बड़े मनोयोग से मेरी बातें सुनते थे, भी सहमत प्रतीत नहीं हुए। मैंने एकाध बार कुछ लायक लोगों को यह व्याख्या बताने का प्रयास भी किया कि प्राकृतिक चयन से मेरा आशय क्या है, लेकिन मैं असफल ही रहा। हाँ, मैं जो पूर्ण सत्य मानता हूँ वह यह था कि सभी प्रकृतिवादियों के मन में सुविचारित तथ्यों की भरमार थी, और जैसे ही उन्हें पर्याप्त व्याख्या के साथ नियम मिला तो उनके असंख्य विचारों को एक दिशा मिल गयी। इस पुस्तक की सफलता का एक अन्य तत्त्व भी था। इसका सामान्य आकार, और मैं इसका श्रेय देता हूँ डॉक्टर वैलेस के निबन्ध को। यदि मैंने पुस्तक का आकार वही रखा होता जिस पर मैंने 1856 में लिखना शुरू किया था, तो यह ऑरिजिन जितनी बड़ी होती और बहुत कम लोगों में इसे पूरा पढ़ने का धीरज होता।

मेरी एक किताब की रूपरेखा 1839 से ही चल रही थी, लेकिन इसका प्रकाशन 1859 में हो पाया। इस देरी से मुझे भी फायदा ही हुआ, क्योंकि इतने समय में सिद्धान्त और भी स्पष्ट हो गया। इससे मुझे कुछ नहीं खोना पड़ा बल्कि इसमें कुछ लोगों ने मेरे या वैलेस के सिद्धान्तों में मूलरूप से योगदान ही दिया। वैलेस के निबन्ध ने तो मुझे इस सिद्धान्त को अपनाने करने में भी मदद की। मैंने केवल एक ही महत्त्वपूर्ण तथ्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया था, जिसके लिए मेरा अन्तर्मन मुझे धिक्कारता भी रहा। वह तथ्य था दूरवर्ती पर्वत शिखरों और आर्कटिक प्रदेशों में एक ही नस्ल के पौधों और कुछ पशुओं की मौजूदगी हिमनद-काल के कारण है। इस दृष्टिकोण ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मैंने इस पर विस्तारपूर्वक लिखा। मुझे यकीन है कि इस विषय पर ई फोर्ब्स के प्रसिद्ध संस्मरण प्रकाशित होने से काफी पहले ही हूकर मेरा लेख पढ़ चुके थे। मैं कुछ मुद्दों पर असहमत था, लेकिन मुझे लगता है कि मैं सही था। बेशक मैंने मुद्रित रूप में यह इशारा कभी नहीं किया कि मैंने इस दृष्टिकोण को स्वतंत्र रूप से पोषित किया था।

दुनिया में कुछ नस्लें ऐसी हैं, जिनके वयस्कों और उन्हीं के भ्रूणों में काफी अन्तर होता है, और एक ही वर्ग के अलग अलग पशुओं के भ्रूणों में काफी समानता रहती है। इस स्पष्टीकरण ने मुझे इतना संतोष दिया, जितना अन्य किसी तथ्य ने नहीं दिया था। उस समय मैं दि ऑरिजिन पर काम कर रहा था। जहाँ तक मैं समझता हूँ दि ऑरिजिन की किसी भी समीक्षा में इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया था। मैंने ऐसा ग्रे को लिखे पत्र में इस बारे में हैरानी भी जाहिर की थी। कुछ ही वर्ष में विभिन्न समीक्षकों ने इसका पूरा श्रेय फिट्ज म्यूलेर और हेकेल को दिया, निःसन्देह यही कार्य उन दोनों ने मेरी तुलना में अधिक व्यापक और सही रूप में किया था। इस बारे में पूरा अध्याय लिखने के लायक सामग्री मेरे पास थी, और मैंने विचारों को थोड़ा और विस्तार दिया होता तो बेहतर

रहता। लेकिन यह तो स्पष्ट था कि मैं अपने पाठक को प्रभावित करने में असफल रहा और जो ऐसा करने में सफल हुआ, मेरे मतानुसार निश्चय ही श्रेय पाने का हकदार है।

मैं यहाँ यह भी कहना चाहूँगा कि मेरे समीक्षकों ने मेरे कार्य को ईमानदारी से से जांचा परखा। इनमें वे पाठक शामिल नहीं हैं जिन्हें वैज्ञानिक ज्ञान नहीं था। मेरे विचारों को बहुधा पूरी तरह से गलत तरीके से पेश किया गया। बड़े ही तीव्र विरोध हुए और मज़ाक तक उड़ाया गया, लेकिन मैं समझता हूँ कि यह सामान्यतया सद्भावना से किया गया। कुल मिलाकर मुझे इसमें सन्देह नहीं कि मेरे कार्यों की तो कई बार ज़रूरत से ज्यादा तारीफ हुई। मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि मैं कभी विवादों में नहीं पड़ा और इसका श्रेय लेयेल को जाता है, जिसने मेरे भूवैज्ञानिक लेखन के बारे में मुझे सख्त हिदायत दी थी कि कभी विवादों में मत पड़ो। इससे लाभ तो कुछ होता नहीं उल्टे समय और स्वभाव दोनों बिगड़ते हैं।

जब कभी भी मुझे लगा कि मैंने गलती की या मेरा काम दोषपूर्ण रहा, और जब भी बड़े ही अनादरपूर्वक मेरी आलोचना हुई या जब कभी अत्यधिक तारीफ के वशीभूत हुआ तो मैं अपने आप से बार-बार यही कह कर खुद को तसल्ली देता कि मैं जितनी मेहनत कर सकता था, मैंने की, जितनी शुद्धता ला सकता था, लाया, और दूसरा कोई भी इससे बेहतर नहीं कर सकता।' मुझे याद है जब गुड सक्सेस बे में, टियेरा डेल फ्यूगो में जब मैं सोच रहा था (मुझे याद है कि इसके बारे में घर पर खत भी भेजा था) कि प्राकृतिक विज्ञान में थोड़ा-सा योगदान करने से बढ़ कर मेरे जीवन का दूसरा उपयोग क्या हो सकता था। मैंने अपनी लियाकत के मुताबिक सर्वश्रेष्ठ किया। आलोचक जो चाहें कहते रहें, लेकिन वे इस दृढ़ विश्वास को नष्ट नहीं कर सकते।

सन 1859 के आखिरी दो महीनों में दि ओरिजिन के दूसरे संस्करण की तैयारी कर रहा था और साथ ही प्राप्त हुए खतों के विशाल ढेर से भी निपट रहा था। पहली जनवरी 1860 को मैं अपने आलेखों को व्यवस्थित करके घरेलू वातावरण में पशुओं और पौधों में बदलाव के बारे में वेरिएशनस ऑफ एनिमल्स एन्ड प्लान्ट्स अन्डर डोमेस्टिकेशन शीर्षक से लेखन की तैयार कर रहा था। लेकिन यह काम 1868 की शुरुआत में ही प्रकाशित हो पाया। इस देरी का कुछ कारण मेरी बार बार की बीमारी रही। एक बार तो मैं पूरे सात महीने बीमार रहा। इसका कुछ कारण यह भी रहा कि मुझे उस समय कुछ अन्य विषयों में रुचि हुई और मैं उन्हीं पर कुछ लिखने और प्रकाशित कराने को लालायित हो उठा।

सन 1862 में 15 मई को शतावरी में निषेचन प्रक्रिया के बारे में मेरी छोटी सी पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक था - फर्टिलाइजेशन ऑफ आर्चिड। इस पुस्तक में मेरी दस माह की मेहनत लगी थी। इसके अधिकांश तथ्यों का संग्रह विगत कई बरस में हुआ था। सन 1839 में ग्रीष्मऋतु के दौरान, और पिछली गर्मियों में मैंने कीट पतंगों द्वारा फूलों के संकर परागण पर ध्यान दिया था। इससे मैंने तो यही नतीजा निकाला था कि इस प्रकार का परागण विशिष्ट प्रकारों को स्थायी बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके बाद प्रत्येक ग्रीष्म ऋतु में मैं कमोबेश इसी काम पर लगा रहा। यही नहीं राबर्ट ब्राउन की सलाह पर मैंने सी के स्पेन्गेल की उत्कृष्ट पुस्तक दास एन्टडेक्टे गेहीमिनस डेर नेचुर मंगवा कर पढ़ी। इस पुस्तक को पढ़ कर मैं अपने इस काम में दूनी लगन से जुट गया। सन 1862 से पहले मैंने कुछ वर्ष तक अपने इस ब्रिटिश आर्चिड के परागण का अध्ययन किया था। इससे मुझे लगा कि मैं पौधों के समूहों पर बेहतर से बेहतर लेख तैयार करूँ, बजाये इसके कि अन्य पौधों के बारे में धीरे-धीरे तथ्य बटोर कर उनके ढेर का प्रयोग करूँ।

मेरा संकल्प बुद्धिमानीपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योंकि मेरी पुस्तक प्रकाशित होने के बाद से सभी प्रकार के फूलों में परागण विधि के बारे में लेखों और शोध प्रबन्धों का तांता-सा लग गया। यह मानना पड़ेगा कि ये सभी मेरे कार्य की तुलना में काफी बेहतर थे। बेचारे स्पेन्गेल का जो काम काफी समय तक बेनामी के गर्त में पड़ा था, उसकी

मृत्यु के कई वर्ष बाद अचानक ही सर्वमान्य हो गया।

इसी बरस मैंने दि जर्नल ऑफ दि लिन्नेयन सोसायटी में एक आलेख प्रकाशित कराया जिसका शीर्षक था आन दि टू फार्म्स ऑफ डायमोर्फिक कन्डीशन ऑफ दि प्रिमुला। इसके बाद आगामी पाँच वर्ष में उभयरूपी और त्रिरूपी पौधों पर पाँच अन्य आलेख प्रकाशित हुए। इन पौधों की संरचना का आशय निरूपित करने में मुझे जितना संतोष मिला, पूरे जीवन में किसी वैज्ञानिक कार्य से नहीं मिला।

सन 1838 या 1839 की बात है, जब मैंने अलसी की उभयरूपता पर ध्यान दिया। पहली बार तो मैंने सोचा कि यह मात्र असंगत अस्थिरता का मामला है, लेकिन प्राइमुला की सामान्य नस्लों की जाँच करने के बाद मैंने पाया कि इसकी दो किस्में अधिक नियमितता और निरन्तरता लिए हुए थीं। इसलिए मैं लगभग यकीन कर चुका था कि सामान्यतया पाए जाने वाले पीत सेवली और बसंत गुलाब दोनों ही ऐसे पौधे हैं जिनके नर और मादा फूल अलग अलग लगते हैं, यह भी कि एक किस्म में छोटे स्तरा केसर और दूसरी किस्म में छोटे पुंकेसर अवर्धन की ओर अग्रसर थे। इसलिए इन दोनों पौधों को इसी दृष्टिकोण के तहत परखा गया; लेकिन जैसे ही छोटे स्तरा केसर वाले फूलों में परागण के बाद प्रजनन हुआ तो उनसे अधिक बीज प्राप्त हुए। इतने बीज अन्य चार सम्भव परागणों में से किसी में भी नहीं मिले, लेकिन अवर्धन का यह सिद्धान्त एक सिरे से ही खारिज कर दिया गया। इसके बाद किए गए कुछ और प्रयोगों से यह प्रमाणित हो गया कि इसकी दोनों ही किस्मों में साफ तौर पर उभयलिंगी गुण थे। इसके बावजूद इनमें आपस में वैसे ही परागण होते थे जैसे सामान्य पशुओं के नर और मादा में संसर्ग होता है। रक्त कुसुम (लायथ्रम) के साथ प्रयोग तो और भी रोचक रहे। इसकी तीनों किस्मों में एक दूसरे का संयोग स्पष्ट था। बाद में मैंने पाया कि एक ही किस्म के दो पौधों के संयोग से होने वाली संतति भी संवृत और प्रबल सादृश्यता रखती है। यह सादृश्यता दो अलग अलग प्रजातियों के पौधों के संयोग से उत्पन्न संकर किस्मों जैसी ही होती है।

सन 1864 की शरद ऋतु में मैंने लताओं के बारे में एक विशद लेख लिखा जिसका शीर्षक था - क्लाइम्बिंग प्लान्ट्स। यह लेख प्रकाशन के लिए लेन्निनयन सोसायटी को भिजवा दिया। इस आलेख के लेखन में चार माह लगे, लेकिन जब इसका प्रूफ मुझे मिला तो मेरी सेहत इतनी खराब थी कि मैं इसे ठीक नहीं कर पाया और कुछ गूढ़ बातों को सही तौर से समझा भी नहीं सका। इस आलेख पर कम ही लोगों का ध्यान गया, लेकिन 1875 में जब इसी को संशोधित रूप में प्रकाशित कराया तो इसकी खूब बिक्री हुई। इस विषय की ओर मेरा रुझान ऐसा ग्रे के लेख को पढ़ कर हुआ था। यह लेख 1858 में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने मुझे बीज भेजे और कुछ पौधे उगाने के बाद मैं पौधे के तने और लता तन्तुओं की घुमावदार बढ़ोतरी देखकर हैरान परेशान हो गया। यह बढ़ोतरी पहली नज़र में तो काफी जटिल प्रतीत हुई लेकिन वास्तव में काफी सरल थी। इसके बाद ही मैंने बहुत सी लताओं के पौधे लगाए और उनका अध्ययन किया। हेन्सलो ने अपने व्याख्यानों में जुड़ाव बनते जाने वाले पौधों के बारे में जो व्याख्या दी थी उससे असन्तुष्ट हो कर मैं इस विषय की ओर और भी आकर्षित हुआ। उन्होंने कहा था कि इन पौधों की कोपलों में ऊपर की ओर बढ़ने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार की लताओं में भी अनुकूलन की प्रवृत्तियाँ उसी प्रकार रोचक हैं, जिस प्रकार की प्रवृत्ति शतावरी में संकर परागण के दौरान दिखाई देती है। वेरिएशन ऑफ एनिमल्स एन्ड प्लान्ट अन्डर डोमेस्टिकेशन शीर्ष से मेरी पुस्तक की शुरुआत 1860 में ही हो चुकी थी, लेकिन इसके प्रकाशन का कार्य 1868 के शुरू में ही हो पाया। यह बहुत ही बड़ी पुस्तक थी। इसके लेखन में मुझे चार बरस और दो माह तक कड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। हमारे घरेलू वातावरण में जीव जन्तुओं और पौधों के परागण के बारे में विभिन्न स्रोतों से बटोरे गए तथ्यों को इस पुस्तक में मैंने विस्तार से प्रस्तुत किया है। पुस्तक के दूसरे खण्ड में परिवर्तनों के नियमों और कारणों, वंशानुक्रम आदि पर विचार किया गया है। हाँ, इतना अवश्य है कि इस विचार विमर्श का दायरा उस समय उपलब्ध जानकारी के भीतर ही रहा। पुस्तक के अन्त में मैंने

पेग्नेसिस के बारे में अपनी तथाकथित बदनाम परिकल्पना का जिक्र किया है। यह देखते हुए कि अप्रमाणित परिकल्पनाओं का कम या कोई मूल्य नहीं होता है, लेकिन इतना ज़रूर है कि यदि इन परिकल्पनाओं से प्रभावित होकर कोई भी व्यक्ति इन पर शोधकार्य करने के लिए प्रवृत्त हो जाता है और इन्हें प्रमाणित करता है, तो मैं समझता हूँ कि मैंने अच्छा कार्य किया है। इस तरीके से बहुत सारे प्रछन्न तथ्यों को आपस में जोड़ते हुए उन्हें बुद्धिपरक रूप दिया जा सकता है। सन 1875 में इसका दूसरा और काफी संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसमें मुझे काफी मेहनत करनी पड़ी।

फरवरी 1871 में डीसेन्ट ऑफ मैन का प्रकाशन हुआ। सन 1837 या 1838 में मुझे यह आभास हुआ कि सभी प्रजातियों में विकार होते रहते हैं, तो इस नियम में मानव का भी तो समावेश होगा। बस इसी आधार पर मैंने अपने संतोष के लिए इस विषय पर तथ्यों का संकलन शुरू कर दिया, काफी समय तक इसे प्रकाशित कराने का मेरा कोई इरादा नहीं था। हालांकि द ओरिजिन ऑफ स्पीशज में किसी प्रजाति विशेष के मूल उद्भव पर विचार नहीं किया गया है, तो भी मैंने यह उचित समझा कि, 'मानव के उद्गम और उसके इतिहास पर भी कुछ प्रकाश डाला जाए,' ताकि कोई सज्जन मुझ पर यह आक्षेप न लगाएँ कि मैंने अपने दृष्टिकोण को छिपाया है। यदि अपनी पुस्तक में मैं मानव के उद्गम के बारे में अपनी अवधारणा के समर्थन में कोई प्रमाण न देता, तो यह पुस्तक अनुपयोगी रहती, साथ ही सफल भी न हो पाती।

लेकिन जब मैंने पाया कि बहुत से प्रकृतिवादियों ने प्रजातियों के उद्विकास के सिद्धान्त को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया है तो मुझे यह उचित प्रतीत हुआ कि मानव के उद्गम के बारे में मेरे पास जो सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर विशेष लेख प्रकाशित कराऊँ। ऐसा करने में मुझे काफी खुशी हुई क्योंकि इसमें मुझे नर मादा के चयन पर पूरा विचार विमर्श करने का मौका मिला। इस विषय में मेरी रुचि भी थी। यह विषय और हमारे घरेलू वातावरण में पौधों, जीव जन्तुओं की संततियों में बदलाव के साथ-साथ परिवर्तन के नियमों और कारणों, वंशानुक्रम और पौधों में संकर परागण मेरे एकमात्र विषय रहे, जिनके बारे में लिखते समय मैंने अपने पास एकत्र समस्त सामग्री का भरपूर उपयोग किया। दि डीसेन्ट ऑफ मैन के लेखन में मुझे तीन वर्ष लगे। हमेशा की तरह बीमारी ने मेरा पीछा यहाँ भी नहीं छोड़ा। कुछ समय नए संस्करणों में और छिटपुट लेखन में भी लग गया। दि डीसेन्ट ऑफ मैन का संशोधित द्वितीय संस्करण 1874 में प्रकाशित हुआ।

सन 1872 की शरद में मानव और पशुओं में मनोभावों का प्रकटीकरण के बारे में मेरी पुस्तक एक्सपेशन ऑफ इ इमोशन्स इन मैन एन्ड एनिमल प्रकाशित हुई। मेरा अभिप्राय तो यही था कि डीसेन्ट ऑफ मैन पर केवल एक अध्याय ही लिखूँ, लेकिन जब मैंने सभी नोट्स बटोरने शुरू किए तो मुझे लगा, इसके लिए अलग से प्रबन्ध लेख लिखना पड़ेगा।

मेरी पहली संतान का जन्म 27 दिसम्बर 1839 को हुआ था, और फौरन ही मैंने उसकी सभी अभिव्यक्तियों पर बारीकी से ध्यान देना शुरू कर दिया था, क्योंकि मुझे लगा कि जिन जटिल और उत्कृष्ट अभिव्यक्तियों को हम बाद में देखते हैं, उनकी बुनियाद तो जीवन की शुरुआत में ही पड़ जाती है और बाद में उनका क्रमिक तथा प्राकृतिक विकास होता चला जाता है। मैंने अभिव्यक्तियों के बारे में सर सी बेल का प्रशंसनीय लेख भी पढ़ा था, और इससे मेरी रुचि इस विषय में बढ़ी, लेकिन मैं उनकी इस धारणा से सहमत नहीं हो पाया कि अभिव्यक्ति के लिए शरीर में विभिन्न पेशियां खास तौर पर बनी हुई हैं। इसके बाद मैं कभी कभार मानव और पालतू जीवों के सम्बन्ध में इसी विषय को लेकर कुछ लिख-पढ़ लेता था। मेरी पुस्तक खूब बिकी। प्रकाशन के पहले ही दिन इसकी 5267 प्रतियां बिक गयीं।

सन 1860 की गरमियों में मैं हार्टफील्ड के निकट आराम करता रहा। वहाँ पर कीटाश (सनड्यू) के पौधों की दो

प्रजातियाँ बहुतायत से थीं। मैंने यह भी ध्यान दिया कि इनके पत्तों में बहुत से कीट भी फंसे हुए थे। मैं कुछ पौधे घर पर लाया और उन पर फिर से कीट डालने के बाद मैंने देखा कि पत्तियों के रोमों में कुछ हलचल होने लगी थी। इसके आधार पर मैंने सोचा कि सम्भवतया यह पौधा कीटों को किसी खास मतलब से पकड़ता है। सौभाग्य से मैंने एक महत्वपूर्ण परीक्षण भी किया। वह यह कि मैंने बहुत से पत्ते विभिन्न प्रकार के नाइट्रोजनयुक्त और नाइट्रोजन रहित घोल में डाल दिए। इन सभी घोलों का घनत्व एक समान था; इस परीक्षण से मैंने पाया कि केवल नाइट्रोजन सहित घोल में ही ऊर्जावान हलचल हुई। इससे इतना तो साफ ही था कि अन्वेषण का एक नया क्षेत्र सामने था।

बाद के वर्षों में जब भी मैं फुरसत में होता तो अपने प्रयोग शुरू कर देता था। और इस तरह कीट भक्षक पौधों पर मेरी पुस्तक इन्सेक्टीवोरस प्लान्टस् जुलाई 1875 में प्रकाशित हुई। यह प्रकाशन पूरे सोलह बरस बाद हुआ था। इस मामले में, और मेरी अन्य पुस्तकों के प्रकाशन में देरी से मुझे लाभ भी हुआ, क्योंकि इतने अन्तराल के बाद कोई भी अपने काम की आलोचना उसी तरह से कर सकता है, जैसे किसी दूसरे के काम की करता। उचित तरीके से उत्तेजित करने पर कोई पौधा ऐसा तरल पदार्थ भी निकालता है जिसमें अम्ल और खमीर हो। ऐसा तत्त्व किसी जीव के पाचक रस की तरह होता है। इस तथ्य की खोज निश्चय ही उल्लेखनीय खोज है।

सन 1876 में मैंने वनस्पति जगत में संकर और स्व निषेचन के प्रभावों के बारे में इफेक्ट्स ऑफ क्रॉस एन्ड सेल्फ फर्टिलाइजेशन इन दि वेजिटेबल किंगडम, नामक पुस्तक प्रकाशित कराने का विचार बनाया है। यह पुस्तक फर्टिलाइजेशन ऑफ आर्चिड की अनुपूरक होगी, जिसमें मैंने यह दर्शाया था कि संकर निषेचन के उपाय कितने पारंगत थे, और इस पुस्तक में मैं बताऊंगा कि इनके नतीजे भी कितना महत्व रखते हैं। ग्यारह साल की इस अवधि के दौरान मैं ने जो विभिन्न प्रयोग किए उनका उल्लेख इस पुस्तक में है। वस्तुतः इस काम की शुरुआत महज संयोगवश हुई थी, और ऐसे कार्यों के लिए घटना भी मेरी आँखों के सामने ही हुई, जब मेरा ध्यान बहुत ही तेजी से इस ओर गया कि संकर निषेचन से पैदा हुए बीजों की नर्सरी के पौधों की तुलना में स्व निषेचित बीजों से तैयार नर्सरी के पौधे जल्दी कमजोर पड़ते हैं। मैं यह भी आशा कर रहा हूँ कि आर्चिड के बारे में मैं अपनी पुस्तक का संशोधित संस्करण प्रकाशित कराऊँ। इसके बाद द्विरूपी और त्रिरूपी पौधों पर अपने आलेखों का प्रकाशन कराऊँ। साथ ही इससे जुड़े कुछ और तथ्य भी प्रकाशित होंगे जिन्हें व्यवस्थित करने का समय मुझे नहीं मिला। यह भी लग रहा है कि अब कमजोरी बढ़ती जा रही है, और अब मैं किसी भी समय अल विदा कह सकता हूँ।

पहली मई 1881 को लिखा - द इफेक्ट ऑफ क्रॉस एन्ड सेल्फ फर्टिलाइजेशन का प्रकाशन 1876 की शरद में हुआ। इसमें प्राप्त परिणामों की व्याख्या की गयी है, और मेरा विश्वास भी है कि एक ही प्रजाति के पौधों में एक पौधे से दूसरे पौधे तक पराग कणों के अभिगमन में कितना सुन्दर क्रिया व्यापार निहित है। हालांकि इस समय मैं यह भी मानता हूँ कि - खासतौर पर हर्मेन मुलेर को पढ़ने के बाद, मुझे स्व निषेचन पर बहुत सी अनुकूलताओं पर अधिक दृढ़तापूर्वक लिखना चाहिए था, हालांकि मैं बहुत सी अनुकूलताओं के बारे में जानकारी रखता था। फर्टिलाइजेशन ऑफ आर्चिड का मेरा काफी बड़ा संस्करण 1877 में प्रकाशित हुआ।

इसी वर्ष फूलों की विभिन्न किस्मों के बारे में दि डिफरेन्स फार्म्स ऑफ फ्लावरर्स का प्रकाशन हुआ और 1880 में इसका दूसरा संस्करण भी आ गया। इस पुस्तक में भिन्न परागवाही नलिका वाले फूलों पर विभिन्न आलेखों का संशोधित संग्रह था जो लिन्नेयन सोसायटी द्वारा प्रकाशित किए गए थे। पुस्तक में उस बारे में कुछ नई सामग्री भी जोड़ दी गयी थी, और कुछ ऐसे पौधों के बारे में भी निष्कर्ष दिए गए थे, जिनमें एक ही पौधे पर दो किस्म के फूल पैदा होते हैं। मैंने पहले भी यह उल्लेख किया है कि भिन्न परागवाही नलिका वाले फूलों की छोटी-सी खोज ने मुझे जितनी खुशी दी, उतनी और किसी बात ने नहीं दी। ऐसे फूलों के गलत ढंग से निषेचन के परिणाम भी काफी

महत्त्वपूर्ण होंगे, क्योंकि इसका प्रभाव संकर किस्मों की अनुर्वरकता भी हो सकता है; हालांकि इस प्रकार के परिणामों पर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है।

मैंने सन 1879 में डॉक्टर अन्स्ट क्रौज लिखित लाइफ ऑफ इरेस्मस डार्विन का अनुवाद प्रकाशित कराया। मेरे पास उपलब्ध सामग्री के आधार पर मैंने उनके चरित्र और आदतों के बारे में भी एक रेखाचित्र इसी पुस्तक में जोड़ दिया। इस छोटी-सी जीवनी को पढ़ने में लोगों ने बहुत कम रुचि दिखायी। मुझे हैरत हुई कि इस पुस्तक की केवल आठ नौ सौ प्रतियाँ ही बिक सकीं।

पौधों में संचरण की शक्ति के बारे में मैंने (अपने पुत्र) फ्रैंक की मदद से 1880 में पॉवर ऑफ मूवमेन्ट इन प्लान्ट्स का प्रकाशन कराया। यह बहुत कठिन कार्य था। फर्टिलाइजेशन ऑफ आर्चिड का जो सम्बन्ध क्रॉस फर्टिलाइजेशन से रहा था, वही कुछ सम्बन्ध इस पुस्तक और क्लाइम्बिंग प्लान्ट्स में था क्योंकि उद्विकास के सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न वर्गों में विकसित लताओं की उत्पत्ति असम्भव होती, यदि सभी पादपों में समवर्गीय प्रकार का मामूली-सा भी संचरण न होता। मैंने इसे सिद्ध किया और मैं एक नए ही प्रकार के सामान्यीकरण की तरफ आगे बढ़ गया। और यह तथ्य था कि संचरण के बड़े और महत्त्वपूर्ण वर्ग, प्रकाश से उत्तेजन, गुरुत्वाकर्षण का खिंचाव तथा अन्य। ये सभी परिवृत्ति के आधारभूत संचरण की ही परिवर्धित किस्में हैं। पौधों को भी जीवित प्राणी मानते हुए उसी प्रकार से उनका विश्लेषण मुझे प्रिय रहा है, और यह बताने में खुशी होती है कि किसी भी पौधे की जड़ के मूल में नीचे की ही ओर बढ़ते जाने की जो अनुकूलता है वह कितनी प्रशंसनीय है।

केंचुओं द्वारा मिट्टी खोद खोदकर ढेर बनाने से वनस्पति गुच्छों के निरूपण के बारे में मैंने अब (पहली मई 1881) को प्रकाशक के पास एक पाण्डुलिपि भेजी है, जिसका शीर्षक है - दि फार्मेशन आफ वेजिटेबल माउल्ड थ्रू द एक्शन ऑफ वार्म्स। वैसे तो यह मामूली-सा विषय है और मुझे नहीं मालूम कि यह किसी पाठक को रुचिकर लगेगी, लेकिन यह विषय मुझे रोचक लगा। चालीस वर्ष पहले मैंने जिओलाजिकल सोसायटी के समक्ष एक आलेख पढ़ा था, उसी की पूर्णता इस पुस्तक में हुई। इसमें प्राचीन भूवैज्ञानिक विचारों को ही पुनः प्रस्तुत किया गया है। इस समय तक मैंने अपनी सभी प्रकाशित कृतियों का जिक्र कर दिया है। ये पुस्तकें मेरे जीवन के महत्त्वपूर्ण सोपानों में से हैं, इसलिए अभी कुछ और भी कहने को बाकी है। पिछले तीस साल के दौरान मेरे दिमाग में हुए बदलाव के बारे में मैं सतर्क नहीं हूँ। सिर्फ एक ही तथ्य का उल्लेख करना चाहूंगा कि कोई विशेष बदलाव तो नहीं हुआ, हां, सामान्य-सी घिसावट जरूर हुई। मेरे पिताजी तिरासी साल तक जीवित रहे और उनके दिमाग में वही सतर्कता बरकरार थी जो शुरु में थी। उनके सोचने विचारने, चलने फिरने, यूँ कहिए दिमाग का हर हिस्सा जागरूक था; और मेरा विश्वास है कि मैं अपने दिमाग की सजगता में कमी आने से पहले ही चल बसूंगा। मैं समझता हूँ कि मैं सभी स्पष्टीकरणों के बारे में अनुमान लगाने और प्रयोगात्मक परीक्षण में और भी दक्ष हो गया हूँ, लेकिन शायद यह अभ्यास करते करते और ज्ञान की बढ़ोतरी से ऐसा हो गया होगा। मैं अपनी बात को स्पष्ट और सतर्क रूप में प्रस्तुत करने में हमेशा ही कठिनाई महसूस करता रहा हूँ, और इस कठिनाई के चलते मेरा काफी समय भी बरबाद हुआ; लेकिन बदले में मुझे यह लाभ भी हुआ कि मैं प्रत्येक वाक्य के बारे में अधिक सजगतापूर्वक सोच सका, और इस प्रकार मैं वितर्क में गलतियों और अपने तथा दूसरों के निष्कर्ष में हुई चूक पर भी ध्यान दे सका।

मुझे ऐसा भी लगता है कि मेरे दिमाग में कुछ खराबी भी थी, जिसके कारण मैं पहले तो किसी कथन या तर्क वाक्य को गलत रूप से या बेतरतीब ढंग से प्रस्तुत करता था। शुरुआत में तो मैं अपने वाक्य लिखने से पहले सोचता था, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में मैंने पाया कि पूरा पृष्ठ बहुत ही तेजी से और शब्दों को अर्धरूप में लिखते

जाने में काफी समय बचता है, और बाद में इनका संशोधन करना आसान रहता है। इस तरीके से लिखे गए वाक्य सोच समझकर लिखे गए वाक्यों की तुलना में कहीं बेहतर होते थे।

अपनी लेखन विधि के बारे में बताने के बाद अब मैं यह बताऊंगा कि अपनी बड़ी पुस्तकों में विषय की सामान्य व्यवस्था में मैंने काफी समय लगाया। सबसे पहले मैं दो या तीन पृष्ठों में मोटी-सी संक्षिप्त रूपरेखा तैयार करता था, और फिर व्यापक रूपरेखा जो कई पृष्ठों की होती थी। इसमें कुछ शब्द या कई शब्द समूचे विचार विमर्श या तथ्यों की श्रृंखला को प्रकट करने वाले होते थे। इनमें से प्रत्येक शीर्षक को और विस्तार देता था या फिर व्यापक रूप से लिखने से पहले कई बार शीर्षक बदलता भी था। मेरी विभिन्न पुस्तकों में दूसरों के द्वारा अनुभूत तथ्यों का व्यापक उपयोग हुआ है और यह भी कि एक ही समय में मैं कई कई विषयों पर काम करता था। इन सबको व्यवस्थित रखने के लिए मैं तीस या चालीस पोर्टफोलिया रखता था और इन्हें जिस कैबिनेट में रखता था उसके खानों पर लेबल लगा रखे थे। इनमें मैं अलग-अलग सन्दर्भ या स्मरण नोट तुरन्त रख लेता था। मैंने बहुत-सी पुस्तकें खरीदी भी थीं, और उनके अंत में अपने काम से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में सूची बना कर लगा रखी थी। अगर मैं किसी से मांगकर किताब लाता था तो अलग से सारांश लिखकर रख लेता था और इस तरह के सारांशों से मेरी बड़ी दराज भर गयी थी। किसी भी विषय पर लिखना शुरू करने से पहले मैं सभी छोटी विषय सूचियों को निकालता और एक सामान्य तथा वर्गीकृत विषय सूची बनाता था। इस प्रकार एक या अधिक सही पोर्टफोलियो में मुझे प्रयोग के लिए संगृहीत सारी जानकारी मुझे मिल जाती थी।

मैं कह चुका हूँ कि पिछले बीस या तीस बरस में मेरा दिमाग एक तरीके से बदल गया है। तीस बरस की उम्र तक या इसके कुछ बाद भी मैं मिल्टन, ग्रे, बायरन, वर्डस्वर्थ, कॉलरिज और शैली की रचनाओं के रूप में काव्य में रुचि लेता था। इन रचनाओं में मुझे काफी आनन्द भी मिला, स्कूली जीवन में तो मुझे शेक्सपीयर पसन्द था, उसके ऐतिहासिक नाटक तो मुझे खास तौर पर पसन्द थे। मैं यह भी कह चुका हूँ कि पहले मुझे चित्रों में काफी और संगीत में बहुत ज्यादा आनन्द आता था। लेकिन अब कई बरस से मैं कविता की एक लाइन पढ़ना भी गवारा नहीं कर सका हूँ। मैंने जब दोबारा शेक्सपीयर पढ़ना शुरू किया तो यह इतना नीरस लगा कि मैं बेचैन हो गया। चित्रों और संगीत के प्रति मेरी रुचि मर चुकी है। आम तौर पर संगीत के सहारे अब मुझे आनन्द तो कम मिलता है। जिस विषय पर काम कर रहा होता हूँ, उसके प्रति अधिक ऊर्जावान ढंग से सोचने लगता हूँ। मुझमें प्राकृतिक दृश्यों के लिए कुछ रुचि है लेकिन यह पहले जितनी प्रखर नहीं रह गयी है। दूसरी ओर, कोरी कल्पना के आधार पर लिखे गए उपन्यास कई बरस से मेरे लिए राहत और आनन्द का सबब रहे हैं, इसके लिए मैं सभी उपन्यासकारों को दुआ देता हूँ। हालांकि ये उपन्यास बहुत उच्च कोटि के नहीं होते थे। मुझे बहुत से उपन्यास पढ़ कर सुनाए गए, मैं सामान्य तौर पर अच्छे और सुखांत उपन्यास पसन्द करता हूँ। दुखांत उपन्यास के खिलाफ तो कानून बनना चाहिए। मेरी रुचि के मुताबिक कोई उपन्यास तब तक प्रथम कोटि का नहीं है जब तक कि इसमें कोई ऐसा चरित्र न हो जिसे आप खूब चाहें और खूबसूरत औरत का जिक्र भी हो तो क्या कहने।

उच्चस्तरीय सौन्दर्यपरक रुचि का अभाव मेरे लिए खेद का विषय है, क्योंकि मेरी रुचि हमेशा से इतिहास, जीवनी और यात्रा वृत्तांत (उनमें कोई वैज्ञानिक तथ्य हो या नहीं तो भी) और सभी विषयों पर लिखे गए निबन्धों में ही अधिक रही। मुझे लगता है कि मेरा दिमाग एक मशीन बन गया है जो तथ्यों के विशाल संग्रह का मंथन करके सामान्य नियमों को निकालता है, लेकिन मैं यह समझ नहीं पाता हूँ कि इससे दिमाग का वही हिस्सा क्यों प्रभावित हुआ, जिसमें उच्च स्तरीय रुचियां जागृत होती हैं। मैं यह समझता हूँ कि मेरे जैसे व्यवस्थित और सुगठित दिमाग वाले व्यक्ति को इस तरह की कमी का सामना नहीं होना चाहिए; अगर मुझे दोबारा जीवन मिले तो मैं एक नियम बना दूँ कि सप्ताह में एक बार कुछ काव्य पढ़ना और कुछ संगीत सुनना ज़रूरी है, इससे मेरे



दिमाग का जो हिस्सा विकसित नहीं हो पाया, शायद इस उपयोग से कुछ सक्रिय हो जाए। इस प्रकार की रुचियों का नष्ट होना बुद्धि के लिए ही नहीं शायद नैतिक चरित्र के लिए भी घातक भी है। इससे हमारी प्रकृति का संवेदनात्मक हिस्सा कमजोर होता चला जाता है।

मेरी पुस्तकें ज्यादातर इंग्लैन्ड में बिकीं। इनका कई भाषाओं में अनुवाद भी हुआ, और विदेशों में भी इनके कई संस्करण बिके। मैंने सुना है कि किसी भी लेखन कार्य का विदेशों में सफल होना ही स्थायी मूल्यवत्ता है। लेकिन मुझे संदेह है कि यह सब विश्वास योग्य भी है; लेकिन यदि इसी आधार पर देखा जाए तो लोगों को मेरा नाम कुछ ही वर्षों तक याद रहेगा। इसलिए उचित तो यही होगा कि मेरी दिमागी गुणवत्ता और उन परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाए जिन पर मेरी सफलता निर्भर रही; यद्यपि मैं जानता हूँ कि कोई भी यह कार्य सही रूप में नहीं कर सकता है। बुद्धिमान लोगों में विचारों को तेजी से समझने की ताकत या प्रज्ञा काफी मुखरित होती है, जैसे हक्सले। लेकिन मैं किसी आलेख या पुस्तक को पहली बार पढ़ता हूँ तो मैं तुरन्त ही प्रशंसा करने लग जाता हूँ, उसके कमजोर पहलुओं पर काफी विचार करने के बाद ही मेरा ध्यान जाता है। विचारों की अमूर्त और अटूट श्रृंखला मेरे मन में बहुत कम चल पाती है; और यही वजह रही कि मैं मेटाफिजिक्स या गणित में कभी सफल नहीं हो पाया। मेरी स्मृति काफी विशाल लेकिन धुंधली है।

मेरे कुछ आलोचकों ने कहा है, 'अरे! वह तो अच्छे हैं, लेकिन उनमें तर्कशक्ति नहीं है।' मैं ऐसा इसे नहीं सोचता कि यह सत्य है, क्योंकि दि ओरिजिन ऑफ स्पीशियल शुरु से आखिर तक एक बड़ा तर्क ही तो है, लेकिन इसे बहुत से धुरंधर लोग भी समझ नहीं सके। यदि तर्कशक्ति बिल्कुल भी न होती तो कोई कैसे इस प्रकार की किताब लिखता। मुझमें अन्वेषण बुद्धि भी है और सामान्य या विवेक बुद्धि भी काफी है। इतनी बुद्धि तो है ही कि मैं सफल वकील या डाक्टर बन सकता था, लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि इससे अधिक मेधावी मैं नहीं हूँ।

यदि बुद्धि के ही तराजू को देखा जाए तो एक बात मेरे पक्ष में जाती है जो सामान्यतया लोगों में नहीं होती है, और वह है चीज़ों को ध्यान से देखना। ऐसी चीज़ें जिन पर आम तौर पर लोगों की नज़र ही नहीं पड़ती है। और पड़ती भी है तो वे सावधानीपूर्वक नहीं देखते हैं। तथ्यों को ध्यान से देखने और तथ्यों के संकलन में मेरी कर्मठता गजब की है। एक बात और भी महत्वपूर्ण है कि प्राकृतिक विज्ञान के प्रति मेरा लगाव बहुत ही प्रगाढ़ और सतत है।

मेरे साथी प्रकृतिवादियों ने इस शुद्ध लगाव का समर्थन करके इसमें बढ़ावा किया है। थोड़ी-सी सज्जानता आते ही मेरी यह आदत बन गई थी कि मैं जो कुछ भी देखता था उसे समझने या समझाने की तीव्र इच्छा रहती थी। इसे यूँ समझिए कि सभी तथ्यों को एक सामान्य नियम के तहत सूत्रबद्ध करने की आदत-सी हो गई है। इन्हीं सब कारणों ने मिल कर मुझमें ऐसा धीरज पैदा कर दिया कि किसी भी व्याख्या रहित समस्या का समाधान तलाशने में मैं कई कई बरस तक जुड़ा रह सकता था। जहाँ तक मैं अपने आप आप को समझ पाया हूँ तो वह यह कि मैं दूसरे लोगों के दिखाए मार्ग पर आंख मूंद कर चल पड़ने का आदी नहीं रहा। मेरा हमेशा यही प्रयास रहा है कि मैं अपने दिमाग को आज़ाद रखूँ ताकि मैं प्रिय से प्रिय परिकल्पना को भी (क्योंकि मैं प्रत्येक विषय पर कुछ न कुछ विचार संजोए रखता हूँ) उस समय त्याग दूँ जब कोई ऐसा तथ्य मुझे बताया जाए जो मेरी परिकल्पनाओं का विरोधी हो। यदि मूंगा भित्तियों के बारे में लिखी किताब दि कोरल रीफ्स को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए तो मुझे अपनी एक भी ऐसी परिकल्पना याद नहीं आती है, जिसे मैंने कुछ समय बाद बदल या पूरी तरह से छोड़ न दिया हो। स्वाभाविक रूप से मैंने मिश्रित विज्ञान में निगमागम के रूप में तर्क करने से स्वयं को दूर ही रखा। दूसरी ओर मैं बहुत हठधर्मी भी नहीं हूँ, और मेरा विश्वास है कि यह हठधर्मिता विज्ञान की प्रगति के लिए घातक है। हालांकि वैज्ञानिक में सकारात्मक किस्म की हठधर्मिता होनी चाहिए, ताकि समय की अधिक बरबादी न हो, (लेकिन) मैं कुछ ऐसे लोगों से भी मिला हूँ, और मुझे पक्का पता है कि इसी कारणवश वे ऐसे प्रयोगों या

अवलोकनों से वंचित रह गए जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उनके लिए काफी उपयोगी होते।

इसके उदाहरण के रूप में मैं एक बहुत पुरानी बात बताता हूँ जो मुझे अभी भी याद है। पूर्ववर्ती काउन्टियों से किसी सज्जन ने मुझे लिखा (बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि वे अपने इलाके में अच्छे वनस्पतिशास्त्री थे) कि सामान्य तौर पर पायी जाने वाली सेम की फलियों में इस वर्ष सभी स्थानों पर फलियां उल्टी तरफ लगी हैं। मैंने तुरन्त लिखा तथा उनसे कुछ और जानकारी भी मांगी क्योंकि मैं उनकी समस्या समझ नहीं पा रहा था, लेकिन उनसे काफी समय तक कोई जवाब नहीं आया। इसके बाद दो अखबारों में, जिनमें से एक कैन्ट से छपा था तथा दूसरा यार्कशायर से, यह खबर छपी थी कि यह एक महत्वपूर्ण तथ्य रहा कि 'इस वर्ष सेम की फलियाँ गलत दिशा में लगीं।' इसलिए मैंने सोचा कि इस प्रकार के सामान्य कथन की तह में कुछ तो असलियत होगी। यह सब पढ़ कर मैं अपने बूढ़े माली के पास गया, जो कैन्ट का निवासी था, और उससे पूछा कि, 'क्या तुमने इस बारे में कुछ सुना है?' उसने जवाब दिया कि, 'नहीं साहब, कुछ गलती हुई होगी क्योंकि केवल लीप वर्ष में ही फलियां गलत दिशा में लगती हैं।' फिर मैंने उससे पूछा कि बाकी के वर्ष में वे किस तरह लगती हैं, और लीप वर्ष में किस तरह से लगती हैं। लेकिन जल्द ही मुझे पता चल गया कि वह इस बारे में कुछ नहीं जानता है, पर वह भी अपने विश्वास पर अड़ा रहा।

कुछ समय बाद मुझे उस व्यक्ति का भी पत्र मिला जिसने सबसे पहले मुझे यह जानकारी दी थी। उसने माफी मांगते हुए लिखा था कि अगर यही बात उसने समझदार किसानों से न सुनी होती तो वह मुझे खत में इस बारे में न लिखता। अब उसने लगभग सभी से वही बात दोबारा पूछी तो उनमें से कोई भी यह नहीं बता सका कि आखिर इस बात का मतलब क्या था। इस प्रकार बिना किसी पुख्ता प्रमाण के एक विश्वास पूरे इंग्लैन्ड में फैल गया। यदि बिना किसी स्थायी विचार के इसे विश्वास कहा जा सकता हो तो ही इसे विश्वास मानेंगे।

मेरे जीवन के दौरान केवल तीन ही ऐसे झूठे वक्तव्य मिले जो जानबूझ कर फैलाए गए थे, और इनमें से एक तो पूरी तरह से कपट था (और इस तरह के बहुत से वैज्ञानिक कपट होंगे) जो कि अमरीकी कृषि जर्नल में प्रकाशित हुआ था। इसमें बताया गया था कि बोस (मुझे मालूम है कि इनमें से कुछ तो पूरी तरह से बधिया होते हैं) की ही एक किस्म से हालैन्ड में एक नई नस्ल का साँड तैयार किया गया है। यही नहीं लेखक ने यह भी दावा किया था कि उसने मेरे साथ पत्राचार भी किया था, और मैं उसके नतीजों के महत्त्व से काफी प्रभावित हुआ था। यह लेख किसी इंग्लिश जर्नल के सम्पादक ने मेरे पास भिजवाया था और इसे पुनः प्रकाशित करने से पहले वे मेरा अभिमत जानना चाहते थे।

एक और प्रकरण में लेखक ने दावा किया था कि उसने प्राइमुला की कई प्रजातियों से अलग अलग किस्में पैदा की थीं, यद्यपि मूल पादपों को सावधानीपूर्वक कीटों की पहुंच से दूर रखा गया था तो भी सभी में भरपूर बीज भी हुए। यह लेख तब प्रकाशित हुआ था, जब मैंने विषमलिंगी पादपों के बारे में ठीक से जानकारी प्राप्त नहीं की थी। यह समूचा व्याख्यान ही एक धोखाधड़ी था, या फिर कीटों को दूर रखने में थोड़ी बहुत असावधानी हुई जिस पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया।

तीसरा मामला तो अधिक जिज्ञासापूर्ण था, मिस्टर हथ ने अपनी पुस्तक कन्सेनजीनियस मैरिज में किसी बेल्जियमवासी लेखक के उदाहरण दिए थे कि उसने खरगोशों की कई पीढ़ियाँ बड़े ही निकटतापूर्ण ढंग से तैयार की थीं, जिनमें घातक प्रभाव रहे ही नहीं। यह विवरण रॉयल सोसायटी ऑफ बेल्जियम के सम्माननीय जर्नल में प्रकाशित हुआ, लेकिन मैं संदेह प्रकट करने से बाज नहीं आया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि कोई भी दुर्घटना क्यों नहीं हुई, जबकि पशुओं के प्रजनन में अपने अनुभव से मैं यही सोचने लगा कि यह असम्भव है। इसलिए मैंने काफी संकोच के साथ प्रोफेसर वान बेनेडेन को लिखा और पूछा कि क्या लेखक भरोसे के लायक है।

इसके प्रति उत्तर में मुझे यही पत्र मिला जिसमें लिखा था, 'यह जान कर सोसायटी को आघात लगा है कि यह समूचा लेख एक प्रपंच था। इसके लेखक को जर्नल में ही खुलेआम चुनौती दी गयी कि वह यह बताए कि प्रयोग के दौरान खरगोशों के बड़े झुंड को उसने कहाँ और कैसे रखा, क्योंकि इसमें कई साल लग गए होंगे, पर उस लेखक से कोई उत्तर नहीं मिला।

मेरी आदतें बड़ी ही सिलसिलेवार हैं और जिस तरह का मेरा काम है उसके लिए बहुत कम उपयोगी हैं। अन्त में मैं यह भी कहूंगा कि मुझे अपना पेट पालने के लिए कहीं नौकरी नहीं करनी पड़ी, यह मेरे लिए बहुत खुशी की बात है। यही नहीं, खराब सेहत के कारण मेरे जीवन के कई साल बेकार गए। लेकिन इसका यह फायदा हुआ कि मैं समाज में मन बहलाव और मनोरंजन के प्रति आकर्षित नहीं हुआ।

इसलिए मैं कह सकता हूँ कि एक वैज्ञानिक के रूप में मेरी सफलता चाहे जितनी भी रही हो, पर जितना मैं समझ पाया हूँ मेरे जटिल और विविधतापूर्ण मानसिक गुणों के कारण पूरी तरह से सुनिर्धारित थी। इन गुणों में कुछ प्रमुख थे - विज्ञान के प्रति लगाव, किसी भी विषय पर लम्बे समय तक सोचते रहने का असीम धैर्य, तथ्यों के अवलोकन और संग्रह का परिश्रम, और अन्वेषण के साथ साथ सामान्य बुद्धि का भी योगदान रहा। मेरे लिए यह आश्चर्य की बात है कि बस इन्हीं सामान्य सी योग्यताओं के बल पर मैंने कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर वैज्ञानिकों के विश्वास को काफी हद तक प्रभावित किया।

मेरे पिता के दैनिक जीवन के संस्मरण

फ्रांसिस डार्विन

इस लेखन में मेरा उद्देश्य यही है कि मैं अपने पिता के दैनिक जीवन के बारे में कुछ विचार प्रस्तुत करूँ। मुझे यही लगा कि मैं इसका एक सामान्य-सा रेखाचित्र डाउन के दैनिक जीवन से शुरू करूँ और मेरे जेहन में और इधर-उधर उनके बारे में जो कुछ जानकारीयाँ बिखरी पड़ी हैं, उनका उल्लेख करूँ। यादगार बातों में से कुछ ऐसी भी हैं जो मेरे पिता के परिचितों के लिए अर्थपूर्ण हो सकती हैं, लेकिन अपरिचितों के लिए बेहूदी और बकवास। फिर भी, मैं इनका उल्लेख इस आशा से कर रहा हूँ कि इससे परिचितों के दिलों दिमाग पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव कुछ और समय तक बना रहेगा। ये परिचित उन्हें जानते थे और उन्हें खूब प्यार करते थे। यह प्रभाव एकदम अमिट तो था ही, इसे शब्दों में बयान कर पाना भी मुश्किल है।

उनकी कद काठी, चेहरे-मोहरे आदि (आजकल विविध फोटोग्राफ बनते हैं) के बारे में बहुत कहने की ज़रूरत नहीं है। उनका कद लगभग छह फुट था, लेकिन वे लम्बे नहीं लगते थे, क्योंकि वे काफी मोटे थे; बाद में वे कुछ दुबला गये; मैंने उन्हें कई बार बाजुओं को तेजी से झुलाते हुए देखा था। उनको देखकर यही लगता था कि वे ताकतवर तो नहीं लेकिन सक्रिय ज़रूर हैं। उनके कन्धे कद के अनुपात में चौड़े नहीं थे, लेकिन बहुत तंग भी नहीं थे। अपनी जवानी में वे काफी सशक्त रहे होंगे, क्योंकि बीगल की यात्रा के दौरान जहाँ सभी लोग पानी पानी चिल्ला रहे थे, वहीं मेरे पिता उन दो लोगों में से एक थे जो दूसरों की तुलना में पानी के लिए संघर्ष नहीं कर रहे थे। एक लड़के के रूप में भी वे बहुत ऊँधम मचाते थे और अपने गले की ऊँचाई तक की छलांग मार जाते थे।

वे झूलते हुए से चलते थे। हाथ में छड़ी रखते थे। छड़ी के निचले सिरे पर लोहे का बंद लगा था। चलते हुए जब छड़ी को ज़मीन पर ठकठकाते थे तो ठक-ठक की आवाज़ दूर तक सुनाई देती थी। उनकी छड़ी की यह लय-ताल पूरे डाउन में सैन्ड वाक के समय आसानी से पहचानी जा सकती थी। दोपहर में जब वे घूमने जाते थे तो कन्धे पर वाटरप्रूफ जैकेट या लबादा डाले होते थे, क्योंकि गरमी के कारण इसे पहनना मुश्किल हो जाता था। ऐसे में यह

साफ दिखाई देता था कि वे अपना लहराता हुआ कदम बमुश्किल घसीट रहे होते थे। घर में भी उनके कदम बहुत धीमे और घिसटते हुए से रहते थे। दोपहर में जब कभी वे सीढ़ियां चढ़ कर ऊपर जाते थे तो उनका उठा हुआ कदम बहुत तेजी से गिरता था, जैसे एक एक कदम बहुत कठिनाई से उठ रहा हो। जब वे कोई काम मनोयोग से कर रहे होते थे तो वे काफी तेज़ी से और आसानी से चलते-फिरते थे, और कई बार लेख लिखाते लिखाते वे तेज़ी से हॉल में आते और एक चुटकी नसवार लेते थे। अध्ययन कक्ष का दरवाजा खुला ही रहता था और कमरे से बाहर आते आते वाक्य का आखिरी शब्द बोल देते थे।

उनके क्रियाकलापों के अलावा मैं समझता हूँ कि उनकी चाल-ढाल में कोई सहज रौब या चलने-फिरने में नफ़ासत नहीं थी। उनके हाथ बड़े ही चंचल थे और उनसे चित्रकारी नहीं हो पाती थी। इस बात का उन्हें हमेशा ही मलाल रहा और कई बार उन्होंने इस बात का ज़िक्र किया कि एक प्रकृतिवादी की ड्राइंग भी बेहतरीन होना बेहद लाजमी है। वे साधारण से माइक्रोस्कोप की सहायता से भी चीर-फाड़ कर लेते थे, लेकिन मैं समझता हूँ कि अपने धीरज और बेहद सावधानी के बल पर ही वे ऐसा कर पाते थे। उनकी खासियत थी कि वे यह भी मानते थे कि चीर-फाड़ में थोड़ी-सी भी दक्षता लगभग अति-मानवीय होती है। उन्होंने एक दिन न्यूपोर्ट द्वारा भौरे की चीर-फाड़ देखकर उसकी खूब तारीफ की। बड़ी ही सफाई से उसने भौरे का स्नायुतंत्र पतली सी कैंची से थोड़ा-सा काट कर ही निकाल लिया था। वे सूक्ष्म टेढ़ी काट को बहुत बड़ा काम मानते थे। जीवन के आखिरी दिनों में उन्होंने बड़े ही जीवट के साथ जड़ों और पत्तियों की टेढ़ी काट का काम सीखा। उनके हाथ कांपते थे इसलिए काटी जा रही वस्तु को स्थिर नहीं रख पाते थे। वे सामान्य माइक्रोटोम में पदार्थ को पकड़े रखने के लिए उसकी मेरु नाड़ी को जकड़ देते थे और रेजर को काँच की पतली पट्टी सतह पर चलाते जाते थे। टेढ़ी काट के मामले में वे अपनी होशियारी पर खुद भी हँसते थे और कहते - 'भाव विभोर हो मूक हूँ'। दूसरी ओर वे आँख और ताकत का ताल मेल बड़ा ही सुन्दर बिठाते थे। वे बहुत अच्छे बंदूकची भी थे और बचपन में पत्थरों से पक्का निशाना लगाते रहे थे। बचपन में उन्होंने घर की पुष्प वाटिका में कंचे से ही एक खरगोश का शिकार कर लिया था और जवानी में पत्थर फेंक कर एक क्रास बीक मार गिराया था। उस पक्षी की हत्या का उन्हें इतना दुख था कि इस घटना को कई बरस तक बताया ही नहीं। बाद में बोले कि अगर उन्हें मालूम होता कि पुरानी निशानेबाजी अभी तक कायम है तो वे हरगिज पत्थर न फेंकते। उनकी दाढ़ी भरी हुई थी और वे कभी भी दाढ़ी की ट्रिमिंग नहीं करते थे। बाल उनके भूरे और सफेद थे तथा खूब मुलायम थे। उनके बाल हमेशा लहराते रहते थे। उनकी मूँछें काफी अजीब थीं क्योंकि उनका एक हाथ मूँछे तराशता रहता था। उम्रदराज होने के साथ-साथ वे गंजे हो गए थे और सिर के पीछे बालों का घेरा-सा रह गया था। उनके चेहरे की रंगत लाली लिए हुए थी जिसे देखकर लोग उन्हें शायद इतना कमज़ोर नहीं समझते थे, जितने कि वे वास्तव में थे। उन्होंने सर जोसफ हूकर (13 जून 1849) को लिखा - सभी मुझे कहते हैं कि मैं काफी खिला-खिला और सुन्दर दिखाई देता हूँ, और ज्यादातर सोचते हैं कि मैं स्वांग कर रहा हूँ, लेकिन आप उनमें से नहीं हैं। और यह बात ध्यान में रखने की है कि उस समय वे गम्भीर रूप से बीमार थे और बाद के समय में तो हालत और भी खराब हो गयी। उनकी आँखें नीलापन लिए हुए भूरी थीं, भृकुटी खूब गहरी और घनी भौंहे आगे को निकली हुई थीं। उनके ऊंचे ललाट पर थोड़ी-सी लकीरें थीं। इसके अलावा उनके चेहरे पर निशान या झुर्रियां नहीं थीं। लगातार बीमारी के बाद भी उनके हाव-भाव से किसी तरह की पीड़ा नहीं झलकती थी।

जब भी वे आनन्ददायक बातें सुनते, एकदम प्रफुल्ल हो उठते थे, और यह प्रफुल्लता उनके चेहरे से झलक उठती थी। उनकी हँसी उन्मुक्त और अट्टहास जैसी होती थी। ऐसी जैसे कोई व्यक्ति अपना सर्वस्व उस बात पर और व्यक्ति को समर्पित कर दे, जिससे उसका मन प्रसन्न हुआ है। अपनी हँसी के साथ वे शरीर को भी हिला डालते थे। हँसते हँसते ज़ोर से ताली भी मारते थे। मैं समझता हूँ कि सामान्यतया वे भावों को इशारों में भी प्रकट करते

थे। कई बार वे कुछ भी स्पष्ट करने के लिए अपने हाथों का प्रयोग करते थे (उदाहरण के लिए फूल का निषेचन) और यह इस प्रकार होता था कि इससे श्रोता को कम उन्हें अधिक मदद मिलती थी। ऐसे वे तब करते थे जब ठीक उसी बात को समझाने के लिए दूसरे लोग पेंसिल से रेखाचित्र बनाते थे। ज्यादातर लोग जिस मौके पर पेंसिल से चित्र बनाकर समझाते थे, वे वही बात हाथों के इशारे से समझाते थे। वे गहरे रंग के कपड़े पहनते थे जो ढीले लेकिन सहज होते थे। हाल ही के कुछ बरसों से उन्होंने लन्दन में भी लम्बा हैट पहनना छोड़ दिया था, और सरदियों में मुलायम काला हैट तथा गरमियों में बड़ा स्ट्रॉ हैट पहनते थे। घर के बाहर वे आम-तौर पर छोटा लबादा पहनते थे। इसी पोशाक में ईलीयट और फॉय द्वारा तैयार किए गए फोटोग्राफों में उन्हें बरामदे में खम्बे के सहारे टिका दिखाया गया है। घर के भीतर पहनने वाली पोशाकों में दो खास बातें थीं। एक तो यह कि वे हमेशा कन्धों पर दुशाला रखते थे, और पैरों में कपड़े के बूट पहनते थे जिसके भीतर फर लगे थे। इन्हीं के ऊपर वे घर में पहने जाने वाले जूते भी पहन लेते थे।

वे सवेरे जल्दी उठते थे और नाश्ते से पहले थोड़ा-सा घूमकर आते थे। यह आदत उन्हें तब पड़ी थी जब वे पहली बार जल चिकित्सा के लिए गए थे, और यह आदत अंतिम साँसों तक बनी रही। जब मैं छोटा था तो अक्सर उनके साथ जाता था और सरदियों में कितनी ही बार लाल लाल उगता सूरज देखा था। यही नहीं, उनका साथ बड़ा ही आनन्दप्रद था। मैं आज भी उसमें सम्मान और गर्व महसूस करता हूँ। जब वे मुझे यह बताते कि सरदियों की अंधियारी सुबह में इससे भी जल्दी चला जाए तो ऊषः काल के झिटपुटे में लोमड़ियों का फुदकना भी देखा जा सकता है।

सवेरे तकरीबन 7.45 पर नाश्ता करने के साथ ही वे काम में लग जाते थे। वे मानते थे कि 8 और 9.30 के बीच के डेढ़ घंटे काम करने के लिहाज से बेहतरीन होते हैं। सुबह 9.30 पर वे ड्राइंगरूम में आ जाते थे और आये हुए खत पढ़ते थे। अगर खत हल्के फुल्के होते तो वे खुश हो जाते। यदि ऐसे खत नहीं मिलते थे तो वे थोड़ा चिन्तित भी हो जाते थे। फिर वे सोफे पर अधलेटे से हो जाते और पारिवारिक खतों को पढ़वा कर सुनते थे।

पढ़वा कर सुनने का यह काम साढ़े दस बजे तक चलता था। इसमें कई बार किसी उपन्यास के हिस्से भी होते थे। इसके बाद बारह या पौन बजे तक फिर काम में लगे रहते थे। इतना काम करने के बाद वे समझते थे कि बस बहुत हुआ, और कई बार बड़े ही सन्तोष के साथ कहते, 'आज पूरे दिन का काम निपटा लिया'। इसके बाद मौसम चाहे अच्छा हो या बारिश हो रही होती वे बाहर निकल जाते थे। उनकी सफेद टैरियर कुतिया, पॉली भी उनके साथ जाती थी, लेकिन अगर मौसम बारिश का होता तो वह मना कर देती या बरामदे में ही आनाकानी करती रहती थी। उसके हाव-भाव में अपने ही साहस के प्रति परेशानी और शर्म भी होती थी। आम तौर पर उसका अन्तर्मन ही जीतता था और जैसे ही वे बाहर निकल जाते थे तो वह भी पीछे नहीं रुक पाती थी।

मेरे पिता को कुत्तों से बहुत लगाव था, और जवानी में वे अपनी बहन के पालतू कुत्तों का ध्यान आसानी से अपनी ओर बंटाने लेंगे थे। कैम्ब्रिज में तो उन्होंने अपने कजिन डब्ल्यू डी फॉक्स के कुत्ते का दिल जीत लिया था, और इतना कि वह छोटा-सा जानवर हर रात को उनके बिस्तर में घुस जाता और उनके कदमों में सोया रहता था। मेरे पिता के पास एक बड़ा ही दबंग कुत्ता भी था, जो उनके प्रति तो समर्पित था लेकिन दूसरों को काट खाने को दौड़ता था। बीगल की यात्रा से लौटने के बाद उस कुत्ते ने उन्हें कैसे याद रखा, उस तरीके को पिताजी ने कई बार बताया था। वे दालान में गए, खड़े होकर चिल्लाए और वह कुत्ता तुरन्त उनके साथ बिना कोई भाव या जोश खरोश दिखाए बस पीछे पीछे चल पड़ा, जैसे पिताजी ने उसे पाँच साल बाद नहीं बल्कि बस कल के बाद ही आज पुकारा था। इस वाक्य को दि डीसेन्ट ऑफ मैन, दूसरा संस्करण, पृ.74 में भी बताया गया है।

मेरी याद में तो इतना ही है कि केवल दो ही कुत्ते ऐसे थे जो मेरे पिता से बहुत लगाव रखते थे। एक कुत्ते का रंग

काला सफेद था और वह सौंधियार कुत्ते की संकर नस्ल का था। बॉब नामक इस कुत्ते को हम बच्चे भी खूब प्यार प्यार करते थे। दि एक्सप्रेस ऑफ इमोशन्स में 'हॉट हाउस फेस' की कहानी में इसी कुत्ते का ज़िक्र है।

हमारी कुतिया, पॉली पिताजी को बहुत चाहती थी। वह सफेद रंग की फॉक्स टैरियर नस्ल की कुतिया थी। बहुत ही तेज़-तर्रार और प्यारी कुतिया थी वह। जब भी उसका मालिक किसी यात्रा पर जाने की तैयारी में होता तो उसे अध्ययन कक्ष में सामान बाँधने के क्रिया-कलापों से उसे इसका आभास हो जाता और वह एकदम सुस्त-सी हो जाती। इसके अलावा जैसे ही उसे अध्ययन कक्ष में चीज़ों को सलीके से रखने की कवायद दिखाई देती तो वह समझ जाती कि मालिक आने वाले हैं। वह बड़ी ही चतुर जीव थी। पिता के देहान्त के बाद वह कभी लड़खड़ा कर गिरती तो कभी उदास होकर पड़ी रहती। अपने डिनर के लिए तो वह ऐसे पड़ी रहती मानो अभी पिताजी उसे बुलाएँगे और कहेंगे कि (जैसा वे हमेशा करते थे) 'ये देखो यह 'भूख से मरी जा रही है।' पिताजी उसकी नाक के ठीक ऊपर बिस्कुट पकड़ते और वह उछलती, और वे भी उसको मौन रूप से दुलराते हुए अपने हावभाव से ही कह देते - बहुत अच्छे बेटा। हमारी कुतिया की पीठ का एक हिस्सा एक बार जल गया था। उस जगह सफेद नहीं बल्कि लाल रंग के बाल उगे थे। उसकी इस कलगी के बारे में पिताजी कहते कि यह पेनजेनेसिस के सिद्धान्त का बेहतरीन उदाहरण है, क्योंकि इस कुतिया का जनक रेड बुल टैरियर था, और जलने के बाद लाल बालों का उगना यह बताता है कि लाल कलिकाएँ प्रच्छन्न रूप में विद्यमान हैं। वे पॉली को बहुत चाहते थे, और उस पर बहुत ध्यान देने में कभी भी अधीर नहीं होते थे। चाहे वह दरवाजे पर बाहर से भीतर आना हो या बरामदे की खिड़की में बैठकर शरारती लोगों पर भौंकना हो, उसकी इस कर्तव्यनिष्ठा पर वह भी बहुत खुश होते थे। पिताजी के देहान्त के कुछ ही दिन बाद वह भी चल बसी, या यूँ कहिए उसने खुदकशी कर ली।

पिताजी का दोपहर भ्रमण सामान्यतया ग्रीनहाउस से शुरू होता था। वहाँ पर वे अंकुरित हो रहे बीजों या प्रयोगाधीन पादपों का निरीक्षण करते थे, लेकिन इस समय वे कोई गम्भीर निरीक्षण नहीं करते थे। इसके बाद वे अपने नियमित भ्रमण 'सैन्ड वाक' के लिए जाते या फिर घर के ठीक पड़ोस में खाली पड़े मैदानों में घूमने चले जाते थे। 'सैन्ड वाक' डेढ़ एकड़ भूमि पर फैली हुई पट्टी थी, जिसके चारों ओर बजरी बिछाकर रास्ता बनाया गया था। इसके एक तरफ शाहबलूत के बड़े बड़े पेड़ों का झुरमुट था, जिससे रास्ता छायादार बन गया था, दूसरी ओर नागफनी की बाड़ लगाकर उसे पड़ोस के चरागाह से अलग किया गया था। उस तरफ जाने पर छोटी-सी घाटी दिखाई देती थी, वह घाटी वेस्टरहेम हिल के किनारे पर जाकर विलीन हो गई थी। कभी वहाँ पर घने पेड़ थे लेकिन अब पिंगल की झाड़ियाँ और श्रीदारु के पेड़ दिखाई देते थे, जो कि वेस्टरहेम हाई रोड तक फैले थे। मैंने पिताजी से कई बार यह कहते सुना था कि इस छोटी-सी घाटी की खूबसूरती ही इस जगह घर बनाने का कारण थी। पिताजी ने सैन्ड वाक पर अलग अलग किस्म के पेड़ लगा रखे थे जिनमें पिंगल झाड़ी, भोजपत्र, जम्बीरी नीबू, श्रृंगीपेड़, बेंत, गुलमँहदी और डागवुड थे। खुली जगह के किनारे किनारे शूलपर्णी की लम्बी कतार खड़ी थी। शुरू-शुरू में वे रोज़ एक निश्चित संख्या में चक्कर लगाते थे। चक्करों की गिनती के लिए वे हर चक्कर के बाद एक निश्चित जगह पर चकमकी पत्थरों को ठोकर से रास्ते में ले आते थे, और जितने पत्थर, उतने चक्कर हो जाते थे। हाल ही के कई बरसों से उन्होंने चक्करों की गिनती छोड़ दी थी और जब तक शरीर साथ देता था, तब तक घूमते रहते थे। बचपन में सैन्ड वाक ही हमारे खेल का मैदान भी रहा, और यहाँ मैं भ्रमण के दौरान पिताजी को लगातार देखता रहता था। वे हमारी बातों में भी रुचि लेते थे और बच्चे जो भी मज़े करते, उससे वे भी आनन्दित होते थे। यह मुझे भी बड़ा ही विचित्र लगता है कि मेरे पिताजी के सैन्ड वाक के बारे में मेरी स्मृतियों में आज भी वही सब तैर उठता है जो उस समय बचपन में मैं सोचता था। यह बताता है कि उनकी आदतों में किसी किस्म का

बदलाव कभी नहीं आया।

जब कभी वे अकेले होते थे तो पक्षियों या जानवरों को ध्यान से देखने के लिए वे बुत से बन जाते थे या एकदम दबे पैरों से चल कर आगे जाते थे। ऐसी अवस्थाओं में कई बार गिलहरियों के छोटे छोटे बच्चे उनके ऊपर, पीठ पर, पैर पर चढ़ जाते और उन बच्चों की माँ पेड़ के तने पर से ही गुस्से में किटकिटाती रहती थी। उनमें तलाश की अद्भुत क्षमता थी। ऐसा हम बचपन में मानते थे, लेकिन जीवन के अंतिम वर्षों में भी वे पक्षियों के घोंसले खोज लाते थे। दबे कदमों चलने की अपनी कला का इस्तेमाल करके वे कई बार अपरिचित पक्षियों के पास तक चले जाते थे, लेकिन मैं समझता हूँ कि यह कला मुझसे छुपाते नहीं थे। उन्हें इस बात का दुख था कि मैं चटिका (हरे रंग का छोटा-सा पक्षी) या स्वर्ण चटिका (सुनहरे रंग का छोटा-सा पक्षी) या इन्हीं जैसे कई अनोखे पक्षियों को नहीं देख पाया। वे बताते थे कि एक बार वे 'विग वुड्स' में बेआहट खिसकते हुए आगे बढ़ रहे थे कि दिन में सोई हुई एक लोमड़ी के सामने जा पहुँचे। वह लोमड़ी इतनी हैरान हुई कि कुछ देर तो जड़वत उन्हें घूरती रही और फिर भाग छूटी। उनके साथ मैं स्पिट्ज कुत्ता भी था, वह भी लोमड़ी को देखकर जरा भी उद्वेलित नहीं हुआ। इस बात को खतम करते हुए वे यही कहते कि उस समय कुत्ता भी कैसे बुझे दिल से चला जा रहा था।

उनके भ्रमण की दूसरी पसन्दीदा जगह थी - आर्चिस बैंक। यह जगह शांत कुडहम घाटी के ऊपरी हिस्से में थी। इस इलाके में धूप चन्दन की झाड़ियों के साथ-साथ शतावरी और मशकबू पौधे भी खूब थे। यही नहीं करंजवृक्षों की शाखाओं की छाया में सेफालेन्थेरा और नियोट्रिया भी उगे हुए थे। इसके ठीक ऊपर 'हेंगगूव' नामक छोटा जंगल भी था, जिसे पिताजी काफी पसन्द करते थे। मैंने कई बार उन्हें वहाँ पर विभिन्न प्रकार की घास का संग्रह करते देखा था, खासकर जब उन्हें सभी प्रकार की घास का नामकरण करना होता था। वे एक छोटे बच्चे की बात दोहराया करते थे कि एक लड़के को कोई ऐसी घास मिली जो उसके पिता ने पहले कभी नहीं देखी थी। वह घास को डिनर के समय प्लेट में रखकर बोला, 'हम तो बहुत विचित्र घास खोजक हैं।'

पिताजी को बाग में ऐसे ही घूमते रहना काफी पसन्द था। साथ में कोई बच्चा या मेरी माँ होतीं या फिर ऐसे ही मंडली बना लेते, और वहीं लॉन में बेंच पर बैठ जाते। आम तौर पर वे घास पर ही बैठते थे। कई बार मैंने उन्हें विशालकाय लाइम-वृक्ष के नीचे लेते देखा था। पेड़ की जड़ में निकले हरे गूमड़ पर वे अपना सिर रख लेते थे। ग्रीष्म ऋतु में हम अक्सर बाहर ही रहते थे। कुँए से पानी निकालने के लिए लगी चर्खी की आवाज उन दिनों की याद आज भी ताज़ा कर देती है। हम लॉन टेनिस खेलते और वे मज़े से देखते रहते थे। कई बार वे अपनी छड़ी की घुमावदार मुठिया से हमारी गेंद को मारकर हमारे पास लौटाते थे।

वैसे तो वे बगीचे को सजाने संवारने में कोई हाथ नहीं बंटाते थे, लेकिन फूल उन्हें बहुत पसन्द थे। ड्रॉइंग रूम में एजालेस का गुच्छा वे खुद ही लगाते थे। मुझे लगता है कि फूल की बनावट और उसकी अप्रतिम सुन्दरता, दोनों को वे कई बार गुम्फित कर देते थे। डाइक्लीट्रा के गुलाबी और सफेद रंग के बड़े लटकते फूलों के बारे में तो यही अक्सर होता था। इसी प्रकार नीले रंग के छोटे छोटे फूलों के प्रति भी उन्हें कुछ कलापूर्ण और कुछ वनस्पति शास्त्रीय लगाव था। फूलों की प्रशंसा में वे दूसरे रंग के हाईआर्ट पर हँसते थे और उनकी तुलना प्रकृति के चमकदार रंगों से करते थे। वे जब किसी फूल की प्रशंसा में बातें करते थे तो मैं ज़रूर सुनता था। यह तो एक प्रकार से फूल के प्रति आभार होता था, उसकी नाजुक बनावट और रंग के लिए उनका प्यार था। मुझे याद है कि जिस फूल को देखकर वे प्रमुदित होते थे उसे बड़े ही हौले से स्पर्श करते थे, उनका यह स्नेह और दुलार ठीक एक बच्चे की तरह निश्छल था।

वे प्राकृतिक घटनाओं का मानवीकरण करने से स्वयं को रोक नहीं पाते थे। यह भावना प्रशंसा और बुराई, दोनों ही स्थितियों में प्रकट हो जाती थी। उदाहरण के लिए नर्सरी के बारे में - ये छोटे छोटे भिखमंगे वही कर रहे हैं जो मैं

नहीं चाहता। किसी संवेदनशील पौधे को पानी की जिस चिलमची में लगाते थे, अगर उसकी पत्तियाँ बाहर निकलने लगती थीं तो उन पत्तियों को करीने से सजाते समय भी वे पत्ते की चतुराई की प्रशंसा सम्मिलित भाव से करते थे। सनड्यू, केंचुओं, आदि के बारे में भी वे इसी प्रकार बोलते रहते थे।

जहाँ तक मुझे याद आता है घूमने फिरने के अलावा घर से बाहर उनका एकमात्र मनोरंजन था - घुड़सवारी। डॉक्टर बेन्स जोन्स के कहने पर उन्होंने घुड़सवारी शुरू की थी। इस मामले में हम भाग्यशाली रहे कि हमें उस समय 'टॉमी' नामक टट्टू मिल गया था, जो सीधा साधा और तेज चाल वाला था। वे इस प्रकार की सैर का खूब आनन्द लेते थे। आसपास के इलाकों का चक्कर लगाकर वे लंच तक आवश्यक लौट आते थे। इस प्रयोजन से हमारे आसपास का इलाका बहुत ही रमणीक था। इसका कारण था कि इस इलाके में छोटी छोटी घाटियाँ थीं जो मैदानी इलाके की टेढ़ी मेढ़ी सड़कों की तुलना में कहीं ज्यादा मनोहर नज़ारा पेश करती थीं। मुझे लगता है कि उन्हें अपने ऊपर भी हैरानी होती होगी कि वे कितने अच्छे घुड़सवार थे, लेकिन बुढ़ापे और खराब सेहत ने उनका यह गुण उनसे छीन लिया था। वे कहते थे कि घुड़सवारी करते समय उतना गहराई से नहीं सोच पाते थे, जितना कि पैदल घूमते समय सोचते थे, क्योंकि घोड़े पर ध्यान देने के कारण गहराई से सोचना नहीं हो पाता था।

यदि अपने अनुभव के अलावा उनकी कही हुई बातों के आधार पर कहूँ तो मैं उनके खेल प्रेम आदि के बारे में कह सकता हूँ, लेकिन वह सब उन बातों का दोहराव ही होगा, जो उन्होंने अपने संस्मरणों में कही हैं। अपने बचपन से ही वे बन्दूक के शौकीन और पक्के निशानेबाज थे। वे कई बार बता चुके थे कि किस प्रकार से दक्षिण अमरीका में तेईस अबाबील पक्षी मारने के लिए उन्होंने केवल चौबीस गोलियाँ चलायी थीं। यह कहानी बताते समय वे यह भी ज़रूर बताते थे कि वहाँ की अबाबीलें हमारे इंग्लैन्ड के मुकाबले कम जंगली होती थीं।

दोपहर का भ्रमण करने के बाद वे डाउन में लंच करते थे। इस मौके पर मैं उनके भोजन के बारे में एक आध बात कर लेता था। मिठाइयाँ खाने की ललक उनमें बच्चों की तरह थी, पर दुर्भाग्य यह कि उन्हें मिठाई खाने की सख्त मनाही थी। वे अपने इस 'दुख' को अधिक समय तक छिपा नहीं पाते थे। यह दुख उन्हें मिठाई न खाने को लेकर होता था, इस दुख को जब तक वे कह नहीं लेते थे, तब तक वे इससे निपट भी नहीं पाते थे।

वे बहुत थोड़ी-सी मदिरा लेते थे, लेकिन ये थोड़ी-सी भी उन्हें काफी फुर्ती देती थी। वे पीने से बहुत डरते थे, और अपने बच्चों को लगातार चेतावनी देते रहते थे कि कोई भी इस लत को अपने पास भी न फटकने देना। मुझे याद है कि एक बार अपने छुटपन में मैंने उनसे पूछा था कि क्या कभी वे मदहोश हुए थे, और बड़ी ही संजीदगी से उन्होंने बताया था कि एक बार कैम्ब्रिज में बहुत ही ज्यादा पी गए थे। मैं इससे बहुत प्रभावित हुआ, इतना कि आज भी मुझे वह जगह याद है जहाँ मैंने यह बात पूछी थी।

लंच के बाद वे ड्राइंग रूम में सोफे पर लेटकर अखबार पढ़ते थे। मैं समझता हूँ कि विज्ञान के अलावा अखबार ही पठन-सामग्री थी, जिसे वे खुद पढ़ते थे। इसके अलावा उपन्यास, यात्रा-वृत्तांत, इतिहास दूसरों से पढ़वा कर सुनते थे। वे जीवन के अन्य पहलुओं पर इतना व्यस्त रहते थे कि अखबार की उसमें कोई जगह नहीं थी, हालांकि वे वाद विवाद की शब्दावली को पढ़कर हँसते ज़रूर थे, मैं समझता हूँ कि केवल ऊपरी मन से। वे राजनीति में रुचि रखते तो थे लेकिन इस बारे में उनकी राय महज एक व्यवस्था के आधार पर थी, वे खुद इस पर गहराई से नहीं सोचते थे।

अखबार पढ़ने के बाद उनका पत्र-लेखन शुरू होता था। साथ ही, वे अपनी पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ भी तैयार करते थे। इसके लिए वे आग के पास अपनी हार्स चेयर रख लेते। कुर्सी के हत्थे पर लगे बोर्ड पर वे अपने कागज रखते थे। यदि खतों की संख्या ज्यादा होती, या खत लम्बे होते तो पहले वे खतों की एक प्रति लिख लेते थे और फिर उसी से बोल बोलकर लिखवाते थे। इन रफ कापियों को वे पाण्डुलिपियों या प्रूफशीट के पीछे लिखते थे। मज़े



की बात यह कि कई बार वे अपना लिखा खुद भी नहीं पढ़ पाते थे। उन्हें जितने भी खत मिलते थे, उन सब को सहेज कर रख लेते थे। यह आदत उन्होंने मेरे दादाजी से सीखी थी और वे बताते थे कि यह काफी उपयोगी रहता था।

मूर्ख, उजड़ड लोग भी उन्हें बहुत से खत भेज देते थे, और पिताजी सबका जवाब देते थे। वे कहते थे कि अगर जवाब नहीं दूँगा तो यह बात अवचेतन में तैरती रहेगी। एक बात और कि यह उनकी विनम्रता को भी दर्शाता था। वे बड़ी विनम्रता से सभी का जवाब देते थे, इससे उनकी दयालुता चारों ओर प्रसिद्ध हो गयी, और यह बात उनकी मृत्यु पर जाकर स्पष्ट हुई।

ऐसी दूसरी छोटी मोटी बातों का ध्यान वे दूसरे खतों का जवाब देते समय भी रखते थे। उदाहरण के लिए किसी विदेशी को खत लिखवाते समय वे मुझे यह कहना कभी नहीं भूलते थे, 'तुम बेहतर लिख सकते हो इसलिए लिखो क्योंकि यह किसी विदेशी को जाएगा।' वे अपने अधिकांश खत इस प्रत्याशा के साथ लिखते थे कि इन्हें पढ़ने वाला लापरवाही से पढ़ेगा, इसीलिए पत्र लिखवाते समय वह मुझे सावधानी से बहुधा बताते जाते थे कि किसी भी महत्वपूर्ण बात से नया पैरा शुरू करो ताकि पाठक का ध्यान खींचा जा सके। प्रश्न पूछ पूछकर वे दूसरों को परेशान करने के बारे में स्वयं भी कितना सोचते रहते थे, यह बात उनके पत्रों से स्पष्ट हो जाएगी।

ऊल जलूल किस्म के खतों का जवाब देने के लिए उन्होंने एक सामान्य प्रकार से लिखा हुआ पत्र छपवा रखा था, लेकिन वह खत उन्होंने शायद ही कभी भेजा हो। मुझे लगता है कि उन्हें ऐसा कोई मौका ही नहीं मिला जिसके लिए वह पत्र भेजा जा सके। मुझे याद है कि एक बार ऐसा मौका आया था जब उन मुद्रित पत्रों का प्रयोग किया जा सकता था। उन्हें एक अजनबी ने लिखा था कि वाद विवाद की एक सभा में 'द इनोव्यूशन' पर चर्चा होगी, और बहुत ही व्यस्त होने कारण उसके पास समय बहुत कम है, इसलिए आप अपने दृष्टिकोणों की एक रूपरेखा भिजवा दीजिए। हालांकि, उस नौजवान को काफी शालीनता भरा जवाब मिला था, तथापि उसे अपने भाषण के लिए अधिक सामग्री नहीं मिली। पिताजी का नियम था कि मुफ्त पुस्तक भेजने वाले हर एक को धन्यवाद देते थे, लेकिन पेम्फलेट के बारे में वे ऐसा नहीं करते थे। वे कई बार हैरानगी जाहिर करते थे कि उनकी अपनी किताबों के लिए किसी ने भी कभी भी उन्हें धन्यवाद नहीं दिया। उन्हें जैसे ही कोई पत्र मिलता था तो वे खुश हो जाते थे, क्योंकि उनकी नज़र में उनके सभी लेखन कार्यों का इससे बेहतर मूल्यांकन और कुछ नहीं हो सकता था। उनकी पुस्तकों में दूसरे रुचि लेते थे तो पिताजी भाव विभोर हो उठते थे।

धन और व्यापार के मामले में वे अत्यधिक सतर्क और सटीक रहते थे। वे सावधानी पूर्वक बहीखाता रखते थे, उसे वर्गीकृत करते और साल के अंत में एक व्यापारी की तरह से लेखे-जोखे का चिट्ठा तैयार करते। मुझे याद है कि भुगतान के लिए दिए गए हरेक चेक को वे फौरन से पेशतर बही में दर्ज करते, मानो यदि ऐसा नहीं किया तो भूल जाएंगे। मुझे लगता है कि दादाजी ने उन्हें यह एहसास दिला दिया था कि वे जितना सोचते हैं, उससे कहीं ज्यादा गरीब हैं। क्योंकि इस इलाके में घर खरीदते समय उन्हें दादाजी की ओर से बहुत ही कम धन मिल पाया था।

इसके बावजूद वे जानते थे कि आगे चलकर उन्हें तकलीफ नहीं होगी, क्योंकि अपने संस्मरणों में उन्होंने लिखा है कि डाक्टरी पढ़ने में मेहनत करने की ज़रूरत नहीं थी क्योंकि उन्हें अपनी आजीविका की अधिक चिन्ता नहीं।

वे कागज का इस्तेमाल बहुत किफायती ढंग से करते थे, लेकिन वास्तव में ये बचत कम और आदत ज्यादा थी। जितने भी खत मिलते उनके साथ मिले खाली कागजों को वे सहेज कर रख लेते थे; कागज का वे इतना आदर करते थे कि खुद अपनी ही किताबों की पाण्डुलिपियों के पीछे लिख डालते थे, दुर्भाग्यवश इस आदत के चलते किताबों की मूल पाण्डुलिपियाँ भी खराब हो गईं। कागज के बारे में उनकी यह भावना रद्दी कागजों के लिए भी थी, और कई बार तो मज़ाक में कहते कि मोमबत्ती जलाने के बाद बचे छोटे कागज के टुकड़े को भी आग में मत

फैंको।

वे विशुद्ध बनियागिरी का भी पूरा आदर करते थे और अपने एक रिश्तेदार की प्रशंसा में कह उठते थे कि उसने अपना भविष्य संवार लिया। अपने बारे में तो वे इतना ही कहते कि जितना धन उन्होंने बचाया उसका उन्हें गर्व है। अपनी किताबों के जरिए प्राप्त धन का भी उन्हें संतोष था। धन की बचत वे इस चिन्ता से भी करते थे कि उनकी संतानों की सेहत ऐसी नहीं कि वे अपना जीवन यापन कर सकें। यह एक ऐसी बात थी जिससे वे कई बरस तक परेशान रहे। मुझे उनकी बातों में से एक अभी भी थोड़ी बहुत याद है। वे कहा करते थे, 'भगवान का शुक्र है कि उसने तुम्हें दाल रोटी का सिलसिला दे रखा है'। बचपन में मैं इस बात का मतलब केवल शब्दों के रूप में ही समझता था।

खतों का काम निपटाने के बाद दोपहर करीब तीन बजे वे बेडरूम में आराम करते थे। एक सोफे पर लेट जाते, सिगरेट पीते हुए कोई उपन्यास या विज्ञान के अलावा कुछ और पढ़वा कर सुनते थे। वे केवल आराम करते समय ही धूम्रपान करते थे, जबकि नौसादर उन्हें तरोताज़ा कर देती थी। नौसादर वे केवल काम करते समय ही लेते थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने नौसादर का काफी सेवन किया। यह लत उन्हें विद्यार्थी जीवन के दौरान ही एडिनबर्ग में लग गयी। नौसादर रखने के लिए उनके पास चाँदी की सुन्दर डिबिया थी, जो उन्हें मायेर में मिसेज वुडहाउस ने दी थी। इस डिबिया को बहुत प्यार करते थे, लेकिन कभी भी अपने साथ बाहर नहीं ले जाते थे, क्योंकि इससे नौसादर की सुंघनी ज्यादा हो जाती थी। अपने किसी पुराने पत्र में उन्होंने लिखा था कि कई माह से उन्होंने नौसादर बन्द कर रखी है, और इस दौरान उनकी हालत एकदम अहदी, आलसी, और बौड़म जैसी हो गयी। हमारे पुराने पड़ोसी और पादरी मुझे बताते थे, 'एक बार तुम्हारे पिताजी ने यह संकल्प कर लिया कि घर के बाहर रहेंगे तो ही नौसादर की सुंघनी लेंगे, यह तो उनके लिए बड़ा ही संतोषप्रद इंतजाम था, क्योंकि मैं अपनी डिबिया अध्ययनकक्ष में रखता था और बगीचे से वहाँ आने का काम नौकरों को बिना बुलाए किया जा सकता था, और इसी बहाने मैं अपने प्यारे दोस्त के पास कुछ अधिक समय गुजार लेता था, दूसरे हालात में शायद यह नामुमकिन होता।' वे बड़े दालान में रखी मेज पर रखे मर्तबान में से नौसादर निकालते थे, नौसादर की एक चुटकी के लिए इतनी दूर जाना कोई बड़ी बाधा नहीं थी, नौसादर के मर्तबान के ढक्कन की खनक अलग ही आवाज़ करती थी। कई बार जब वे ड्राइंगरूम में होते थे, तो उन्हें अचानक ही इलहाम होता था कि अध्ययन कक्ष में जल रही आग धीमी पड़ गयी लगती है, और जब हम में से कोई एक कहता कि चलो देख कर आते हैं, तो पता चलता कि नौसादर की चुटकी भी आ गयी है। सिगरेट पीने की आदत उन्हें बाद के वर्षों में पक्की सी हो गई, हालांकि पम्पास की सैर के दौरान उन्होंने गाउकोस के साथ सिगरेट पीने की आदत पड़ गयी थी। मैंने उन्हें यह कहते सुना था कि मेट के प्याले के साथ सिगरेट का कश सारे सफर की थकान और भूख दोनों को दूर कर देता था।

दिन में चार बजे के करीब वे सैर के लिए कपड़े पहनने के लिए नीचे आते और इस काम में इतने पक्के थे कि सीढ़ियाँ उतरते हुए उनके कदमों की आवाज़ सुनकर कोई भी कह सकता था कि अब चार बजे के आस पास का समय है।

दिन में लगभग साढ़े चार बजे से साढ़े पाँच बजे तक वे काम करते और फिर ड्राइंग रूम में आ जाते थे, और फिर उपन्यास पढ़वाने तथ सिगरेट पीते हुए आराम करने (लगभग छह बजे) तक वे खाली बैठे रहते थे।

आगे चलकर उन्होंने देर से डिनर करना छोड़ ही दिया था, और साढ़े सात बजे चाय (हम सब डिनर करते थे) और साथ में एक अण्डा या गोश्त का छोटा-सा टुकड़ा ले लिया करते थे। डिनर के बाद वे कभी भी कमरे में नहीं रुकते थे और यह कहते हुए माफी माँगते कि जिसकी घोड़ी बूढ़ी हो उसे अपना सफर जल्दी शुरू कर देना चाहिए। यह भी उन संकेतों में से एक था कि उनकी कमज़ोरी बढ़ती जा रही थी। आधा घंटे भी कम या ज्यादा बातचीत की तो सारी

रात की नींद का कबाड़ा और अगले दिन का आधा काम तो बिगड़ ही जाता था।

डिनर के बाद वे मेरी माँ के साथ बैकगेमोन नामक खेल खेलते थे। हर रात दो बाजियाँ होती थीं। कई बरस से खेल में हार जीत का रिकार्ड भी रखा जा रहा था, और इसके स्कोर में उन्हें बहुत रुचि थी। इन बाजियों में वे दिलो जान से जुट जाते थे। खेल में अपनी बदनसीबी को कोसते और मेरी माँ की खुशनसीबी पर बनावटी गुस्सा जाहिर करते हुए बिफरने का नाटक करते।

बैकगेमोन खेलने के बाद वे कोई वैज्ञानिक किताब खुद ही पढ़ने बैठ जाते। अगर ठीक हुआ तो ड्राइंगरूम में ही और अगर वहाँ शोरगुल हुआ तो अपने अध्ययनकक्ष में।

शाम को वे इस समय तक अपनी ताकत के मुताबिक पढ़ चुके होते थे, और कोई पढ़कर सुनाए इससे पहले ही, बहुधा वे सोफे पर लेट जाते और मेरी माँ उन्हें पियानो पर धुनें सुनाती। हालांकि उन्हें संगीत की बारीकियाँ नहीं मालूम थीं, लेकिन उन्हें अच्छे संगीत से बहुत प्यार था। वे इस बात पर खेद जाहिर करते थे कि उम्र बढ़ने के साथ साथ वे संगीत में खुशी पाना भूलते जा रहे हैं। तो भी जहाँ तक मुझे याद है कि अच्छी धुनों को अभी भी पसन्द करते थे। मैंने उन्हें एक ही धुन गुनगुनाते सुना था - और वह थी वेल्श गीत की धुन 'Ar hydy nos', यह धुन वे एकदम सही तरीके से गुनगुनाते थे; वे कभी कभी ओटाहवाइटियन गीत भी गुनगुना लेते थे। संगीत की समझ न होने के कारण वे किसी भी धुन को दुबारा समझने में नाकाम रहते थे, लेकिन उन्होंने अपनी पसन्द में निरन्तरता बनायी हुई थी। जब कभी भी उनकी पसंदीदा पुरानी धुन बजायी जाती तो वे पुलक उठते और कहते, 'यह इतनी मधुर धुन कौन-सी थी?' वे बीथोवन की सिम्फनी के कुछ अंशों और हेन्डेल की कुछ धुनों को भी पसन्द करते थे। वे शैली में विभिन्नता के प्रति भी संवेदनशील थे। वे मिसेज वर्नन लशिंगटन को भावोत्पादक रूप से संगीत बजाते सुनते थे। यही नहीं जून 1881 में हेन्स रिचर जब डाउन आए थे, तो पियानो पर उनके संगीत को सुन वे विमुग्ध हो गए थे। वे अच्छी गायकी का भी लुत्फ उठाते थे और संगीत की अन्तिम गत या करुणामय धुन को सुनकर लगभग रो पड़ते थे। उनकी भतीजी लेडी फेरर जब सुलिवन के गीत 'Will he come' पर साज छेड़ती थीं तो वह उनके लिए सुख की पराकाष्ठा होती थी। वे अपनी रुचि के लिए अत्यधिक भाव विभोर रहते थे, और यदि कोई दूसरा भी उनसे सहमत होता था तो वे उसके सामने प्रमुदित हो उठते थे।

वे शाम को बहुत थक जाते थे, और जीवन के आखिरी वर्षों में तो यह थकान बहुत बढ़ गई थी। वे रात में लगभग दस बजे के करीब ड्राइंग रूम से निकल जाते थे और साढ़े दस के करीब सोने चले जाते। उनकी रातें बहुत कष्टप्रद होती थीं। वे घंटों जागते रहते या बिस्तर पर बैठे रहते थे, और बेचैनी में पहलू बदलते। रातों में वे अपने विचारों की ऊहापोह में अधिक परेशान होते थे, और कई बार उनका दिमाग किसी ऐसी समस्या में उलझ जाता था जिसे वे लगभग नकार चुके होते थे। रात में भी अक्सर ऐसा होता कि दिन में परेशान करने वाली कोई समस्या फिर से उन्हें परेशान करने लगती थी, मैं समझता हूँ यह तब ज्यादा होता था जब वे किसी झंझटी खत का जवाब नहीं दे पाते थे।

इस प्रकार की यह लगातार पढ़ाई, जिसका जिक्र मैं पहले भी कर चुका हूँ, कई बरस तक चलती रही, और इसी वजह से वे साहित्य के विनोदपरक पहलू को समझ पाए। उन्हें उपन्यासों का चस्का-सा लग गया था और मुझे याद है कि उन्हें इस बात पर कितना आनन्द आता था कि वे लेटे हुए सिगरेट के कश ले रहे हैं और कोई उपन्यास पढ़कर उन्हें सुना रहा हो। वे उपन्यास की कथा वस्तु और चरित्र चित्रण, दोनों में गहरी रुचि लेते थे, और कथा समाप्त होने तक वे उसके अन्त का अंदाज़ा नहीं लगा पाते थे। वे यह मानते थे कि उपन्यास का अन्त स्त्रैण कुटेव की तरह होता है। दुखान्त कथाओं को वे पसन्द नहीं कर पाते थे। इसी वजह से वे जार्ज ईलियट की प्रशंसा नहीं कर पाते थे, जबकि वे सिलास मार्नर की यदा कदा प्रशंसा करते थे। वाल्टर स्कॉट, मिस ऑस्टेन और मिसेज

गास्केल की कृतियाँ तो बार बार पढ़वाते थे, इतना पढ़वाते कि पढ़ते पढ़ते उनमें नीरसता आ जाती थी। वे एक बार में दो या तीन किताबें उठा लेते थे, एक उपन्यास और शायद एक जीवनी तथा एक पुस्तक यात्रा वृत्तान्त के बारे में। वे ऐसे ही या पुरानी पद्धति की किताबों को पढ़ना शुरू नहीं कर देते थे, बल्कि वे नवीनतम पुस्तकों को पसंद करते थे। ये पुस्तकें वे पुस्तकालय से लाते थे।

उनकी साहित्यिक रुचि और अभिमत उस स्तर के नहीं थे, जितना तेज़ उनका दिमाग था। वे खुद भी सोचते थे कि जिस बात को वे अच्छा समझते थे उसके बारे में पूरी तरह स्पष्ट थे। वे मानते थे कि साहित्यिक रुचि के मामले में वे किसी दूसरी दुनिया के थे, और इसमें से अपनी पसन्द और नापसन्द के बादे में भी बताते थे, साहित्यिक लोगों के बारे में तो वे कहते थे कि इस सम्प्रदाय से उनका कोई नाता नहीं है।

कला के सभी मामलों पर वे आलोचकों पर हंसते थे और कहते थे कि उनके अभिमत पुरानपंथी हैं। इसी प्रकार चित्रकारी के बारे में वे कहते थे कि आज जिन चित्रकारों की उपेक्षा हो रही है कभी अपने जमाने में वे धुरंधर माने जाते थे। युवक के रूप में चित्रों के प्रति उनका अनुराग एक तरह से इसका प्रमाण है कि कला के एक उपादान के रूप में वे इन चित्रों को पसन्द करते थे, केवल पसन्द दिखाने के लिए नहीं। इसके बावजूद वे पोर्ट्रेट को काफी हल्का मानते थे और कहते थे कि फोटोग्राफ इसके मुकाबले कहीं बेहतर हैं, जैसे कि वे चित्रकार की समस्त कला के प्रति उदासीन हो अपनी आँखें बन्द कर लेते थे। लेकिन यह सब वे इसलिए कहते थे ताकि हम उनका पोर्ट्रेट बनवाने का विचार छोड़ दें, क्योंकि इसकी प्रक्रिया उन्हें बहुत ही उबाऊ लगती थी।

इस प्रकार कला के सभी विषयों के बारे में उन्हें एक अनभिज्ञ के रूप में देखने की हमारी भावना इस बात से और मजबूत हो जाती थी कि वे अपने चरित्र के अनुरूप ही इस बारे में भी दिखावटीपन नहीं रखते थे। रुचि के साथ साथ अन्य गंभीर बातों के मामले में भी उन्होंने अपने सुदृढ़ विचार बना रखे थे। मुझे एक मौका याद आता है जो कि इसका अपवाद हो सकता है। एक बार वे जब मिस्टर रस्किन के बेडरूम में टर्नर्स को देख रहे थे, तो उन्होंने बाद में भी और उस समय भी यह स्वीकार नहीं किया कि मिस्टर रस्किन ने उनमें क्या देखा था, उस बारे में कुछ भी नहीं समझ पाए थे, लेकिन यह बहानेबाजी वे अपने बचाव के लिए नहीं कर रहे थे बल्कि अपने मेजबान के बचाव में कर रहे थे। वे इस बात पर काफी खुश और हैरान हुए थे, जब बाद में मिस्टर रस्किन कुछ चित्रों के फोटोग्राफ लाए (मैं समझता हूँ कि वे वेनडाइन के पोर्ट्रेट) और उनके बारे में बड़े ही आदरपूर्वक मेरे पिताजी से अभिमत माँगा।

पिताजी का वैज्ञानिक अध्ययन ज्यादातर जर्मन भाषा में होता था, और यह उनके लिए बहुत ही श्रमसाध्य था। मुझे यह बात तब पता लगी जब मैंने उनकी पढ़ी किताबों में पेंसिल से लगाए गए निशानों को देखा, तो पाया कि निशान बहुत कम अन्तरालों पर लगाए गए थे। वे जर्मन को 'वर्डाम्टे' कहते थे, मानो अंग्रेजी उच्चारण ही करना है। वे जर्मन लोगों के प्रति विशेष रूप से क्रोधित हो उठते थे, क्योंकि वे यह बात मानते थे कि यदि जर्मन चाहें तो सरल भाषा भी लिख सकते हैं, वे कई बार फ्रेडबर्ग के प्रोफेसर हिल्डब्रान्ड की तारीफ करते हुए कहते कि वे फ्रान्सीसी भाषा जैसी सरल और स्पष्ट जर्मन लिखते हैं। वे कई बार अपनी जर्मन मित्र को जर्मन भाषा का वाक्य देकर अनुवाद करने को कहते और यदि वह जर्मन भक्त महिला उस वाक्य को सहज रूप से अनुवाद न कर पाती तो हँसते। उन्होंने शब्दकोश में सिर खपा खपाकर जर्मन खुद ही सीखी थी। वे कहते थे कि किसी वाक्य को कई कई बार दोहराता हूँ, तब तक दोहराता हूँ जब तक कि उसका अर्थ मुझे स्पष्ट न हो जाए। काफी पहले जब उन्होंने जर्मन सीखना शुरू किया था तो वह इस बात का बखान करते (जैसा वे बताते) कि सर जे हूकर ने यह सुनकर कहा था, 'मेरे प्रिय मित्र, यह कुछ भी नहीं है, मैं तो यह शुभ काम कई बार शुरू करके छोड़ चुका हूँ।'

व्याकरण में कमज़ोरी के बावजूद वे जर्मन बेहतर तरीके से समझ लेते थे, और जिन वाक्यों को वे समझ नहीं पाते

थे, वे वाक्य वास्तव में कठिन होते थे। उन्होंने जर्मन सही प्रकार से बोलने का प्रयास कभी नहीं किया, बल्कि शब्दों का उच्चारण ऐसे करते थे, मानो वे अंग्रेजी के हों। इससे उनकी कठिनाई कम नहीं होती थी, खासकर जब वे जर्मन वाक्य पढ़कर उसका अनुवाद कराते थे। उच्चारित ध्वनियों की बारीकी वे नहीं पकड़ पाते थे, इसलिए उच्चारण में थोड़े से भेद को समझना उनके लिए मुश्किल था।

उनकी एक खासियत यह भी थी कि वे विज्ञान की उन विधाओं में भी रुचि लेते थे, जो उनकी अपनी विधा से बिल्कुल अलग थीं। जीव विज्ञान से जुड़े विषयों के बारे में उनके विश्लेषणपरक सिद्धान्तों को काफी ख्याति प्राप्त हुई। यह तो कहा ही जा सकता है कि वे सभी विधाओं में कुछ न कुछ तलाश लेते थे। उन्होंने विभिन्न विषयों की खास खास किताबें भी पढ़ीं। इनमें पाठ्य पुस्तकें काफी थीं, जैसे हक्सले की इन्वर्टेब्रेट एनाटोमी या बेलफॉर की एम्ब्रियोलॉजी। इन सभी पुस्तकों की विषयवस्तु उनकी अपनी विशेषज्ञता से कहीं परे की बातें थीं। इसी प्रकार मोनोग्राफ प्रकार की पुस्तकों का अध्ययन नहीं करते थे।

इसी प्रकार जीव विज्ञान के अलावा अन्य प्रकार की पुस्तकों के प्रति भी वे संवेदना रखते थे, खासकर जिन्हें वे परख नहीं पाते थे। उदाहरण के लिए उन्होंने नेचर को पूरा पढ़ लिया था, भले ही इस पुस्तक का अधिकांश भाग गणित और भौतिकी से सम्बन्धित था। मैंने उन्हें कई बार यह कहते भी सुना था कि जिन आलेखों को (स्वयं उन्हीं के अनुसार) वे समझ नहीं पाते उन्हें पढ़ने में भी उन्हें बहुत आनन्द आता था। काश! मैं भी उन्हीं की तरह से हँस पाता, जब वे यह बात कहकर ठहाका मारते थे।

यह भी काफी मज़ेदार बात है कि वे उन विषयों पर भी अपनी रुचि बरकरार रखते थे, जिन पर वे पहले ही काम कर चुके होते थे। भूविज्ञान के बारे में तो यह बात एकदम खरी उतरती थी। अपने एक पत्र में उन्होंने मिस्टर जुड को लिखा था कि वे अवश्य घर आएँ, क्योंकि लेयेल की मृत्यु के बाद से उन्होंने भूविज्ञान पर चर्चा नहीं की थी। साउथम्पटन के भूगर्भ में पड़े कंकरो के बारे में उन्होंने सर ए गेकेई से कुछ चर्चा अपने पत्रों के जरिए की थी, जो इसका ही दूसरा उदाहरण है। यह चर्चा उन्होंने अपने देहान्त से कुछ ही पहले की थी। इसी प्रकार डॉक्टर डोहर्न को लिखे एक पत्र में उन्होंने बार्नकल (एक समुद्री जीव जो जलयानों के पेंदे में चिपका रहता है) के बारे में अपनी रुचि के बरकरार रहने का जिक्र किया था। मैं समझता हूँ कि यह उनके दिमाग की ताकत और उर्वरता के कारण था। इस बारे में वे कहते थे कि यह किसी दैवी शक्ति का उपहार है। वे अपने बारे में यही नहीं बल्कि कभी कभी यह भी बताते थे कि वे किसी विषय या प्रश्न के बारे में कई-कई बरस तक सजग रहते थे। उनकी यह मेधा शक्ति किस सीमा तक थी, यह बात इससे सिद्ध हो जाती है कि उन्होंने नाना प्रकार की समस्याओं का समाधान किया, जबकि ये समस्याएँ उनके समक्ष काफी पहले आ खड़ी हुई थीं।

यदि अपने आराम के क्षणों के अलावा भी वे कभी खाली बैठे होते थे तो उसका मतलब यही होता था कि उनकी तबीयत बिल्कुल ठीक नहीं; क्योंकि ज़रा-सा आराम मिलते ही वे अपने जीवन के बंधे हुए रास्ते पर चल पड़ते थे। रविवार और बाकी के दिन सब उनके लिए बराबर थे। उनके जीवन में काम और आराम का समय निर्धारित था। उनके दैनिक जीवन को निकट से देखने वालों के अलावा किसी दूसरे के लिए यह समझ पाना निहायत ही नामुमकिन था कि उनकी राजी-खुशी के लिए उनका नियमित जीवन कितना ज़रूरी था। अभी मैंने उनकी जिस जीवनचर्या का जिक्र किया है उसको सही रूप में चलाए रखने के लिए वे कुछ भी करने को तैयार रहते थे। यदि लोगों के सामने कुछ बोलना होता था तो भले ही वह सामान्य-सी बात हो, वे उस समय बहुत तैयारी करते थे। सन 1871 में अपनी बड़ी बेटी की शादी के लिए जब वे गाँव के छोटे से गिरजे में गए तो उस समय प्रार्थना के दौरान वे सहज नहीं हो पाए। इसी तरह के अन्य मौकों पर भी वे सहज नहीं रह पाए थे।

मेरे ख्यालों में अभी भी वह घटना तरोताज़ा है जब वे ईसाईयत की दीक्षा के दौरान हमारे साथ चर्च में थे। हम

बच्चों के लिए यह एक अनोखी घटना होती थी कि वे चर्च में रहें। मुझे याद है कि अपने भाई ईरास्मस को दफनाने के मौके पर वे कैसे लग रहे थे। बर्फ की फुहारों के बीच काले लबादे में खड़े हुए उनका चेहरा निहायत ही संजीदा और पीड़ा से भरा हुआ दिखाई दे रहा था।

कई बरस तक दूर रहने के बाद जब एक बार वे लिनेयन सोसायटी की सभा में गए, वास्तव में यह एक गंभीर विषय था, किसी भी के लिए यह घटना दिल बैठाने के लिए काफी होती, और इस सबके बाद जो परेशानियाँ उठानी पड़तीं उन सबसे हम किसी तरह बच गए। इसी प्रकार सर जेम्स पेगेट ने एक ब्रेकफास्ट पार्टी दी थी, उसमें मेडिकल कांग्रेस (1881) के कुछ प्रमुख मेहमान भी थे, और यह दावत उनके लिए बहुत ही कष्टदायक साबित हुई।

सुबह सुबह का समय ऐसा होता था जब वे अपने आप को सहज समझते थे, और अपने सभी कामों को कहीं ज्यादा महफूज ढंग से पूरा करते थे। इसीलिए जब वे अपने वैज्ञानिक दोस्तों से मिलने लन्दन जाते थे तो, इस आवागमन का समय सवेरे दस बजे तक ही रखा जाता था। यही कारण था कि वे यात्रा पर जाते समय सबसे पहली गाड़ी पकड़ने का प्रयास करते थे, और लन्दन में रहने वाले अपने रिश्तेदारों के घर पहुँचते थे तो वे सब अपनी नित्य क्रियाओं में ही लगे होते थे।

वे अपने एक एक दिन का हिसाब रखते थे। किस दिन उन्होंने काम किया और किस दिन अपनी खराब सेहत के कारण वे कुछ नहीं कर पाए, उनके लिए यह बताना संभव होता था कि साल भर में कितने दिन वे निष्क्रिय रहे। उनका यह रोजनामचा, पीले रंग की एक डायरी के रूप में हुआ करता था। यह डायरी उनके आतिशदान पर रखी रहती थी। यह डायरी दूसरी पुरानी डायरियों के ऊपर रहती थी। इस डायरी में वे यह भी दर्ज करते थे कि कितने दिन वे अवकाश पर रहे और कब लौटे।

अवकाश के दिनों में वे ज्यादातर एक सप्ताह के लिए लन्दन जाते थे। या तो अपने भाई के घर (6, क्वीन एन्न स्ट्रीट) या फिर अपनी बेटी के घर (4, ब्रायन्स्टन स्ट्रीट)। अवकाश के दिनों में मेरी माँ उनके साथ ही रहती थीं। जब उनकी बीमारी के दौरें बढ़ जाते या बहुत ज्यादा काम करने की वजह से उनका सिर झूलने लगता था, तो इस तरह का अवकाश उनके लिए ज़रूरी हो जाता था। वे बड़े ही बेमन से लन्दन जाते थे, और इसके लिए सौदेबाजी भी करते थे। उदाहरण के लिए कभी कहते कि छह दिन की जगह पाँच दिन में ही लौट आएंगे। इस सारी यात्रा में उन्हें जो बेचैनी होती थी, वह केवल यात्रा की कल्पना से ही हो जाती थी, उन्हें तो यात्रा के नाम से ही पसीना छूटता था, और यह हालात सिर्फ शुरुआत में ही रहती थे, वर्ना तो कानिस्टन की लम्बी यात्रा के बाद भी उन्हें बहुत कम थकान हुई। उनकी कमज़ोरी को देखते हुए यह थकान हमें कम ही लगी। इस यात्रा में उन्होंने बच्चों जैसी खुशी जाहिर की थी, और यह खुशी बेइन्तहा थी।

हालांकि, जैसा उन्होंने बताया था कि उनकी सौन्दर्यपरक रुचि में गिरावट आ रही थी, तो भी प्राकृतिक नज़ारों के लिए उनका प्रेम तरोताज़ा और पुख्ता ही बना रहा। कोनिस्टन में की गयी हर सैर उन्हें ताज़ा दम बना देती थी। एक बड़ी झील के दो किनारों पर बसे इस पर्वतीय देश की खूबसूरती का बखान करते वे थकते नहीं थे।

इन लम्बे अवकाशों के अलावा वे कुछ समय के लिए दूसरे रिश्तेदारों के पास भी जाते रहते थे। कभी लेइथहिल के पास रिश्तेदारी में तो कभी अपने बेटे के पास साउथेम्पटन। उन्हें ऊबड़ खाबड़ ग्रामीण इलाके में घुमक्कड़ी बहुत पसन्द थी। लेइथहिल और साउथेम्पटन के पास ग्राम्य भूमि, एशडाउन जंगल के पास झाड़ियों से भरी हुई परती जमीन, या उनके दोस्त सर थॉमस फेरेर के घर के पास बंजर में उन्हें बहुत मजा आता था। अपने अवकाश काल में भी वे निठल्ले नहीं बैठते थे, बल्कि कुछ न कुछ तलाशते रहते थे। हार्टफील्ड में उन्होंने ड्रोसेरा नामक पौधे को कीड़े वगैरह पकड़ते देखा और इसी तरह टॉर्क में उन्होंने शतावरी का परागण देखा, और यही नहीं थाइम के नर

मादाओं के सम्बन्ध भी जाँचे परखे।

अवकाश बिता कर घर लौटने पर वे प्रसन्न हो उठते थे। लौटने पर अपनी कुतिया पॉली से उन्हें जो प्यार मिलता था उस पर वे बहुत खुश होते थे। उन्हें देखते ही वह खुशी से व्याकुल हो उठती थी, उनके चारों ओर घूमती, किंकियाती, कदमों में लोटती, कूद कर कुर्सी पर चढ़ जाती और वहीं से छलांग मार कर नीचे आती। और पिताजी - वे नीचे झुककर उसे थपथपाते, उसके चेहरे को अपने चेहरे से छुआते, और वह उनका चेहरा चाट भी लेती। वे उस समय बहुत ही नरम और प्यार भरी आवाज़ में बोलते थे।

पिताजी में कुछ ऐसी ताकत थी कि गरमी की इन छुट्टियों को खुशनुमा बना देते थे। सारा परिवार इस बात को महसूस करता था। घर पर उन्हें काम का जो बोझ रहता था, उसके चलते जैसे उनकी खुशमिजाजी काफ़ूर हो जाती थी, और जैसे ही इस बोझ से निजात मिलती तो अवकाश के दिनों का आनन्द उठाने के लिए वे जैसे जोश से भर जाते थे, और उनका साथ बहुत ही रोचक बन जाता था। हमें तो यही लगता था कि एक सप्ताह के साथ में उनका जो रूप हमें दिखाई देता था, वह रूप तो एक महीने घर रहने के दौरान भी देखने को नहीं मिलता था।

मैंने अभी जिन अवकाशों की बात की है, उनके अलावा वे जल चिकित्सा के लिए भी जाते रहते थे। सन 1849 में जब वे बहुत बीमार थे और लगातार पीड़ित थे, तो उनके एक दोस्त ने जल चिकित्सा के बारे में बताया। काफी समझाने के बाद वे मेलवर्न में डॉक्टर गुली के चिकित्सा केन्द्र में जाने को तैयार हो गये। मिस्टर फॉक्स को लिखे पत्रों में पिताजी ने बताया था कि इस इलाज से उन्हें काफी फायदा हुआ था, और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मानो अब सभी बीमारियों का इलाज मिल गया, लेकिन बाद में वही हुआ कि इलाज के दूसरे तौर तरीकों की तरह यह भी बेअसर साबित होने लगा। जो भी हो यह तरीका उन्हें इतना पसन्द आया कि घर आकर अपने लिए दूध बाथ का इंतज़ाम कर लिया और हमारा खानसामा उन्हें नहलाने का काम भी सीख गया।

मूर पार्क में एल्डरशॉट के पास डॉक्टर लेन के जल चिकित्सा केन्द्र में वे बार बार जाने लगे थे, वहाँ से लौटने के बाद उनका चित्त प्रसन्न हो जाता था।

उन्होंने अपने बारे में जो कुछ बताया है उसके आधार पर यह अंदाज़ लगाया जा सकता है कि परिवार और दोस्तों के साथ उनके सम्बन्ध किस प्रकार थे, हालांकि इन सम्बन्धों का पूरी तरह से वर्णन कर पाना नामुमकिन सा है, लेकिन मोटे तौर पर अंदाज़ लगा पाना मुश्किल नहीं है। उनके वैवाहिक जीवन के बारे में, मैं ज्यादा कुछ नहीं जानता। हाँ, इतना ज़रूर है कि माँ के साथ उनका रिश्ता और लगाव बहुत गहरा था। उनके प्रति वे बहुत ही प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते थे। उनकी मौजूदगी में पिताजी को सबसे ज्यादा खुशी होती थी। यदि उनका साथ न होता तो शायद पिताजी का जीवन बहुत ही गमगीन होता। उनके जीवन में संतोष और खुशी का दरिया मेरी माँ ने ही प्रवाहित किया था।

उनकी पुस्तक द एक्सप्रेसन ऑफ द इमोशन्स से ज्ञात होता है कि वे बच्चों की हरकतों को कितना बारीकी से देखते थे। यह उनका जन्मजात गुण था (मैंने उन्हें कहते सुना था)। हालांकि वे रोते चिल्लाते बच्चों के हाव भाव को बारीकी से देखने को आतुर रहते थे, लेकिन उसके दुख के प्रति उनकी संवेदना के चलते यह आतुरता धरी रह जाती थी। अपनी एक नोट बुक में उन्होंने अपने छोटे बच्चों की बातों को लिख रखा था, जिससे आप समझ सकते हैं कि वे बच्चों के बीच रहकर कितनी खुशी महसूस करते थे। कभी कभी ऐसा लगता है कि उन सभी घटनाओं की याद करके वे एक तरह से दुखी भी होते थे, क्योंकि बचपन दूर जा चुका है। उन्होंने अपने री कलेक्शन्स में लिखा है : 'जब तुम बहुत छोटे थे तो तुम्हारे साथ खेलकर मैं भी आनन्द मग्न हो जाता था, उन दिनों की याद बड़ी ही दुखद है क्योंकि वे बीते दिन कब आने वाले!'

छोटी बिटिया एनी की असमय ही मृत्यु के कुछ दिन बाद उन्होंने जो वाक्य लिखे, वे उनके मन की सुकोमलता को

बताते हैं-

'हमारी बेचारी बिटिया एनी 2 मार्च 1841 को गॉवर स्ट्रीट में पैदा हुई थी और 23 अप्रैल 1851 की दोपहर को मेलवर्न में हमसे सदा के लिए बिछुड़ गई।

'मैं उसकी याद में ये चन्द पेज लिख रहा हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि अपने वाले समय में, यदि हम जिन्दा रहे, तो लिखी हुई ये सभी घटनाएँ उसकी याद को और भी गहराई से हमारे सामने लाएँगी। मैं जिस तरह से भी उसके बारे में सोचूँ हमारे बीच से उसके चले जाने के बावजूद उसकी जो शरारतें आज भी हमारे सामने कौंध जाती हैं वे उसकी किलकारियाँ। इसके अलावा उसकी खासियत में पहली तो थी उसकी संवेदनशीलता जो कि अजनबी लोगों के ध्यान में नहीं आती थी और दूसरे उसका गहरा प्रेम। उसके चेहरे से ही पता चल जाता था कि वह कितनी प्रसन्न और अबोध है, उसके लिए एक एक पल असीम शक्ति और जीवंतता से भरा हुआ था। उसे गोद में उठाकर घूमना भी बहुत खुशी प्रदान करता था। आज भी उसका प्यारा चेहरा मेरी आँखों के आगे तैर उठता है। कई बार वह मेरे लिए नौसादर की चुटकी लाती थी, और उस समय मुझे खुश देखकर स्वयं भी पुलक उठती थी। उसका वह पुलकित मुखड़ा अब भी मेरे सामने दिखाई देता है। जब वह अपने चचेरे भाई-बहनों के साथ खेल रही होती थी, तो मेरी आँखों के इशारे मात्र से उसके चेहरे के हाव-भाव बदल जाते थे, हालाँकि मैं कभी भी अप्रसन्नता भरी नज़र से उसे नहीं देखता था, तो भी उसकी चंचलता को एक विराम-सा लग जाता था।

उसकी दूसरी खासियत यह थी कि उसमें बड़ा ही गहरा स्नेह था जो कि उसकी प्रसन्नता और किलकारियों को और भी भावपूर्ण बना देता था। जब वह छोटी-सी थी तो भी यह बात दिखाई देती थी। अपनी माँ को छुए बिना तो जैसे उसे चैन ही नहीं आता था, खासकर जब वह बिस्तर में लेटी होती थी, मैं देखता था कि बहुत बहुत देर तक अपनी माँ के बाजुओं को सहलाती रहती थी। वह जब कभी बहुत बीमार पड़ती तो उसकी माँ भी उसके साथ लेटकर उसे दुलराती रहती थी, यह सब दूसरे बच्चों से बिल्कुल अलग होता था। इस तरह वह आधे आधे घंटे तक खड़ी मेरे बालों को संवारती रहती थी, वह कहती थी 'बाल' ठीक कर रही हूँ। फिर बोलती बहुत सुन्दर या फिर मेरी प्यारी बच्ची मेरे कॉलर और कफ के साथ खेलती रहती थी।

उसकी इन किलकारियों के अलावा भी उसका व्यवहार बहुत ही प्रेमपूर्ण, निश्छल, सहज, सरल था। उसमें जरा भी दुराव छिपाव नहीं था। उसका मन अबोध और निर्लिप्त था। उसे देखते ही कोई भी उस पर भरोसा कर सकता था। मैं हमेशा यही सोचता था कि इस बुढ़ापे में भी हमारी आत्मा उसी तरह बनी रहती जिस पर इस संसार चक्र का कोई असर किसी भी दशा में न पड़ता। उसके सभी काम ऊर्जा से भरे, सक्रिय और सलीकेदार होते थे। मैं सैन्डवाक पर काफी तेज़ चलता था, लेकिन जब कभी वह मेरे साथ होती थी तो मेरे आगे आगे ही अपनी पैरों के पंजों पर फुदकती चलती तो बड़ा ही मनोहर लगता था, और इस सारे समय उसके चेहरे की आभा और मधुर मुस्कान आज भी आँखों के आगे तैर जाती है। मेरे सामने वह जिस तरह से नखरे करती थी, उसकी याद भी मुझे भाव विभोर कर देती है। कई बार वह बातें बढ़ा चढ़ाकर पेश करती थी, और जब मैं उसी की भाषा का प्रयोग करते हुए उससे कुछ पूछता तो अपने सिर को हल्का सा झटका देकर कहती, 'ओह! पापा! आपको इतना भी नहीं मालूम!' अपनी बीमारी के छोटे से दौर में उसके मुखड़े पर बहुत ही ज्यादा सहजता और दैवतुल्य भाव दिखाई देते थे। उसने कभी कोई शिकायत नहीं की, कभी भी अधीर नहीं हुई, हमेशा दूसरों का ख्याल रखती थी और उसके लिए जो कोई भी जो कुछ भी करता था, तो वह बड़े ही सभ्य और करुणामय ढंग से अपना आभार प्रकट करती थी। जब वह बहुत थक गई और बोलने में तकलीफ होने लगी तो भी उसका लहजा नहीं बदला। जब भी उसे कोई चीज दी जाती थी तो वह आभार जरूर प्रकट करती जैसे, 'वह चाय तो बहुत अच्छी थी।' जब मैं उसे पानी पिलाता थे वह बोल उठती, इसके लिए बहुत बहुत धन्यवाद, और मुझे लगता है कि यही उसके वे बेशकीमती बोल थे, जो उसके होंठों से



निकल कर मेरे कानों में शहद घोल जाते थे।

पिताजी ने उसके बारे में लिखा था, 'हमारे पूरे परिवार की रौनक चली गई, हमारे बुढ़ापे की चश्मे चिराग थी वो, उसे भी मालूम होगा कि हम उसे कितना प्यार करते थे। काश वह जान पाती कि हम कितनी गहराई और नज़ाकत से उसे प्यार करते थे। उसका प्यारा मुखड़ा आज और हमेशा हमारी आँखों के आगे घूमता रहेगा। उसे बहुत बहुत दुआएँ!'

'अप्रैल 30, 1851'

बचपन में हम सभी उनके साथ खेलने का आनन्द उठाते थे। वे जो कहानियाँ सुनाते थे इतनी अनूठी होती थीं कि हमें अपने साथ बाँध कर रख लेती थीं।

उन्होंने हमारा लालन पालन किस तरह किया, वह इस घटना से स्पष्ट हो जाएगा। यह घटना मेरे भाई लियोनार्ड के बारे में है। पिताजी हमें यह घटना अक्सर सुनाते रहते थे। वे बैठक में आए और देखा कि लियोनार्ड सोफे के किनारे पर खड़ा नाच रहा था, इससे तो सारी कमनियाँ खराब हो जाएँगी, पिताजी बोले, 'अरे लेनि! यह ठीक नहीं है,' इस पर लियोनार्ड जवाब देता तो फिर ठीक है कि आप कमरे से बाहर चले जाइए। लेकिन पिताजी ने आजीवन किसी भी बच्चे पर गुस्सा नहीं किया, फिर भी कोई बच्चा ऐसा नहीं तो जो उनकी अवज्ञा करता था। मुझे अच्छी तरह से याद है कि जब एक बार मेरी लापरवाही के लिए पिताजी ने मुझे झिड़क दिया था, मुझे अभी भी वह घड़ी याद है कि किस प्रकार मैं उदास हो गया था, लेकिन पिताजी ने मुझे ज्यादा देर तक उदास नहीं रहने दिया। जल्द ही इतनी दयालुता से उन्होंने मुझसे बात की, कि मेरी सारी उदासी दूर हो गई। हमारे प्रति उनकी प्रसन्नतापूर्ण, प्रेमपूर्ण भावना सदा सर्वदा बनी रही। कई बार मुझे हैरानगी होती है कि वे ऐसा किस तरह से कर पाते थे, क्योंकि हम लोग तो उनके मुकाबले कुछ भी नहीं थे, लेकिन मुझे इतना तो पता ही है कि उन्हें यह मालूम था कि उनके प्रेमपूर्ण वचनों और व्यवहार से हम सब कितना खुश होते थे। वे अपने बच्चों के साथ हँसते थे, और अपने ऊपर भी हँसने देते थे। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हमारे बीच के सम्बन्ध काफी संतुलित थे।

वे हरेक की योजनाओं या सफलताओं में हमेशा रुचि लेते थे। हम उनके साथ ठिठोली करते थे, और कहते थे कि उन्हें अपने बेटों पर भरोसा नहीं है। मिसाल के तौर पर, वे अपने बेटों की इस बात पर जल्दी यकीन नहीं करते थे कि हम लोगों ने कुछ काम किया है, क्योंकि वे यह नहीं मानते थे कि हम सब पूरी तरह समझदार हो चुके हैं। दूसरी तरफ यह भी रहता था कि वे हमारे काम को देखकर काफी तरफदारी भी करते थे। जब मैं यह सोचता था कि किसी भी काम को लेकर उन्होंने काफी ऊँची कसौटियाँ बना रखी हैं, तो इस समय वे काफी रुष्टता दिखाते और झूठे क्रोध से भर जाते थे। उनके संदेह भी उनके चरित्र के अभिन्न अंग थे। जिस किसी भी चीज़ को स्वयं से जोड़कर देखते तो उस काम के प्रति उनका नज़रिया बहुत ही अनुकूल रहता था, और इसीलिए वे हरेक के प्रति उदार रहते थे।

वे अपने बच्चों के प्रति भी आभार प्रकट करना नहीं भूलते थे, इसके लिए उनका अपना ही तरीका था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने उनके लिए कोई खत लिखा हो या कोई किताब पढ़कर सुनायी हो और उन्होंने आभार न प्रकट किया हो। अपने छोटे पौत्र बर्नार्ड पर तो वे जान छिड़कते थे। वे कई बार बताते थे कि लंच करते समय ठीक सामने अगर बर्नार्ड बैठा होता था, तो उन्हें बेहद खुशी होती थी। उनकी और बर्नार्ड की पसन्द भी एक जैसी ही थी। स्वाद को ही लें तो दोनों ही सफेद शक्कर के बजाय भूरी शक्कर पसंद करते थे, और नतीजा होता, 'हमारी पसंद एक है न!'

मेरी बहन लिखती है :

'हमारे साथ खेलकर पिताजी कितना खुश होते थे, यह मुझे अच्छी तरह से याद है। वह अपने बच्चों के साथ बहुत

गहराई तक जुड़े हुए थे, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि वे संतानों के प्रति अंध प्रेम रखते थे। हम सभी के लिए वे बहुत अच्छे दोस्त थे, बहुत ही श्रेष्ठ, संवेदनशील व्यक्ति थे। हालांकि इस बात को बता पाना पूरी तरह से नामुमकिन है कि वे अपने परिवार के प्रति कितना प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते थे। जब हम बच्चे थे तब भी और जब हम बड़े हो गए तब भी।'

हमारे बीच प्रगाढ़ता और खेल के दौरान वे कितने अच्छे साथी थे। इन दोनों बातों का प्रमाण इससे मिल जाएगा कि एक बार उनके चार वर्षीय बेटे ने उन्हें सिक्स पेन्स (जैसे भारत में पहले इकन्नी चलती थी उसी प्रकार इंग्लैंड का एक सिक्का) का लालच दिया और कहा कि चलो काम के समय भी खेलें।

वे अपने आप में बहुत ही सहनशील और प्रसन्नवदन नर्स भी थे। मुझे याद है कि जब भी मैं बीमार होता था तो मैं उनके साथ स्टडी सोफे पर बैठा हुआ महसूस करता मानों मैं शांति और आराम के सागर में बैठा हूं। इस दौरान मैं दीवार पर टंगे भूगर्भीय नक्शे पर आँखें गड़ाए रखता था। शायद उनके काम करने का समय होता था क्योंकि वे हमेशा घोड़े के बाल से बनी कुर्सी पर अलाव के पास बैठे रहते थे।

उनमें कितना धैर्य था, इसका पता इस बात से भी चल जाएगा कि जब कभी भी हमें बैंड एड टेप, गॉद, धागे, पिन, कैंची, डाक टिकटों, फुट पट्टी या हथौड़ी की ज़रूरत होती तो उनके अध्ययनकक्ष में दनदनाते हुए चले जाते थे। ये सब चीज़ें और ऐसी ही कई दूसरी ज़रूरी चीज़ें जो कहीं और नहीं मिलती थीं, उनके पास शर्तिया मिलती थीं। वैसे तो उनके काम के समय में हमें वहाँ जाना गलत लगता था, लेकिन जब बहुत ज़रूरी हो जाता था तो हम जाते ही थे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि उनके चेहरे पर कितना धैर्य था जब उन्होंने मुझसे यह कहा था, 'तुम्हें क्या लगता है कि तुम बाद में नहीं आ सकते थे, मुझे बहुत परेशानी होती है।' जब कभी भी हमें स्टिकिंग प्लास्टर की ज़रूरत होती थी तो उनके कमरे में जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे, क्योंकि उन्हें यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि हम अपने हाथ-पैर काटते रहें। यहीं तक होता तो चल जाता लेकिन खून देखकर उनके जो संवेदनशील भाव जाग उठते थे, हम उससे भी बचना चाहते थे। मैं हमेशा ध्यान रखता था कि वे पर्याप्त दूरी पर चले गए हों और तभी मौका पाकर प्लास्टर ले उड़ता था।

'मैं अतीत में झाँक कर देखूँ तो जीवन के उन शुरुआती दिनों में काफी नियम कायदे थे, और सिवाय कुछ रिश्तेदारों (और कुछेक ज़िगरी दोस्तों) के अलावा, हमारे घर में कोई और नहीं आता था। दिन की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद हम जहाँ चाहें वहाँ जाने के लिए आज़ाद थे, और हमारे जाने की जगह खास तौर पर दीवानखाना या बगीचा होता था, और इस तरह से हम लोग हमेशा अपने माता-पिता के साये में ही रहे। हमें उस समय बहुत ही खुशी होती थी, जब वे बीगेल की कहानियाँ या श्रूजबेरी में बीते बचपन की घटनाएँ - कुछ स्कूली जीवन और कुछ अपनी शरारतों के बारे में बताते थे।'

वे हमारी रुचियों और इच्छाओं का बहुत ख्याल रखते थे और उन्होंने हमारे साथ जीवन जिस ढंग से बिताया वैसे तो बहुत कम ही लोग कर पाते हैं। लेकिन एक बात तो तय है कि इस प्रगाढ़ता में भी हमें कभी भी यह नहीं लगता था कि हम दूसरों की इज़्ज़त करने और उनका हुक्म मानने में कोई आनाकानी करें या कमी आने दें। वे जो कुछ भी कहते थे वह हमारे लिए पत्थर की लकीर होता था। हमारे किसी भी सवाल का जवाब देने में वे अपना पूरा दिलो-दिमाग लगा देते थे। ऐसा ही रोमांचक वाक्या मुझे याद आता है, जो मुझे यह एहसास दिलाता है कि हम जिस चीज़ की फिक्र करते थे, उसकी उन्हें भी उतनी ही फिक्र रहती थी। वे बिल्लियों में बहुत रुचि नहीं लेते थे, लेकिन मेरी बहुत-सी बिल्लियों की खासियत उन्हें मालूम थी, और कुछेक की आदतों और खासियतों का बखान तो उन्होंने तब भी किया जबकि उन बिल्लियों को मरे हुए कई साल हो चुके थे।

'अपनी संतानों के साथ वे जिस तरह से पेश आते थे, उसकी एक और खासियत यह भी थी कि वे अपने बच्चों की

आज़ादी और व्यक्तित्व के बारे में ऊँचे विचार रखते थे। यहाँ तक कि छोटी लड़की के रूप में जो आज़ादी मुझे मिली थी उसकी याद भी मुझे खुशी से भर देती है। हमारे माता-पिता को यह जानने या सोचने की ज़रूरत नहीं रहती थी कि हम लोग क्या करते हैं, जब तक कि हम खुद ही न बताएँ। वे हमें हमेशा यह याद दिलाते रहते थे कि हम भी ऐसे प्राणी हैं जिनके विचार और ख्यालात उनके लिए बहुत खास हैं। इसलिए हमारे भीतर के सभी गुण उनकी मौजूदगी में और भी निखर उठे।

हमारे सद्गुणों के बारे में जो उन्हें अतिशय विश्वास था, हमारे बौद्धिक या नैतिक गुणों पर उन्हें जो गर्व था, उससे हम लोग बिगड़ैल या घमण्डी नहीं बने बल्कि और भी विनम्र और उनके प्रति शुक्रगुजार ही रहे। इसके पीछे निःसन्देह यही कारण था कि उनके चरित्र, उनकी सदाशयता और उनकी अन्तरात्मा की महानता ही तो थी, जिसका अमिट प्रभाव हम पर पड़ा था। यह प्रभाव उनके द्वारा हमारी प्रशंसा या उत्साहवर्धन से कहीं ज्यादा हमारे भविष्य का नियन्ता बन गया।

परिवार के मुखिया के रूप में उन्हें बहुत स्नेह और इज़्जत मिली हुई थी। वे नौकरों से बहुत ही नरमी से पेश आते थे। नौकरों से कुछ भी माँगने से पहले वे यह ज़रूर कहते थे, 'देखो, तुम मेरी मदद करो---' अपने नौकरों पर उन्होंने शायद ही कभी गुस्सा किया हो। मुझे याद है कि कभी बचपन में एक बार उन्हें किसी नौकर को डाँटते सुना था, मैं सारे माहौल से इतना घबरा गया था कि डर के मारे छत पर भाग गया। वे बगीचे, गायों आदि की रखवाली के पचड़े में नहीं पड़ते थे। वे घोड़ों पर थोड़ी बहुत चिन्ता जाहिर करते थे, कभी कभी बड़े ही संदेह में पड़ कर पूछते कि वे घोड़ागाड़ी चाहते हैं, ताकि सनड्यू के लिए केस्टन को भेजें या फिर पौधे मंगवाने के लिए वेस्टरहेम नर्सरी भेजें, या ऐसा ही कोई काम करायें।

एक मेज़बान के रूप में मेरे पिता में एक खास तरह का आकर्षण था; मेहमानों की मौजूदगी उन्हें उत्तेजना से भर देती थी और वे अपने सर्वोत्तम रूप में सामने आने को लालायित हो उठते थे। श्रृंखला में वे कहा करते थे कि ये उनके पिता की इच्छा थी कि मेहमाननवाजी लगातार करते रहना चाहिये। मिस्टर फॉक्स को लिखे एक पत्र में उन्होंने इस बात के लिए खेद व्यक्त किया था कि घर मेहमानों से भरा होने के कारण वे खत नहीं लिख पा रहे हैं। मेरा ख्याल है कि वे इस बात से हमेशा बेचैनी महसूस किया करते थे कि वे अपने मेहमानों की आवभगत के लिए ज्यादा सब कुछ नहीं कर पा रहे हैं, लेकिन नतीजे अच्छे ही रहते और इसमें कोई कमी रह भी जाती तो उसे इस तरीके से पूरा कर लिया जाता कि मेहमान इस बात के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र थे कि वे जो चाहें, करें। अमूमन सबसे ज्यादा आने वाले मेहमान वे ही लोग होते तो शनिवार को आते और सोमवार को लौट जाते। जो लोग इससे ज्यादा अरसे तक टिके रहते, आम तौर पर रिश्तेदार वगैरह होते और उनकी जिम्मेवारी पिता की तुलना में माँ की ज्यादा रहती।

इन मेहमानों के अलावा कुछ विदेशी लोग होते। कुछ अजनबी लोग भी आते। ये लोग लंच के लिए आते और दोपहर ढलने पर लौट जाते। पिता जी उन लोगों को लंदन से डाउन के बीच की लम्बी दूरी के बारे में बताने के लिए खासी मेहनत करते और बताते कि ये सफर कितनी मुश्किलों से भरा हुआ है। वे सहज ही ये मान कर चलते कि इस सफर में जितनी तकलीफ खुद उन्हें होती है, उतनी ही मेहमानों को भी होगी। फिर भी, अगर वे आने से अपने आपको आने से रोक नहीं पाते तो पिता जी उनकी यात्रा का इंतज़ाम करते। वे उन्हें बताते कि कब आयें, और ये बताने से भी न चूकते कि वापिस कब जायें। उन्हें अपने मेहमानों से हाथ मिलाते देखना एक शानदार नज़ारा होता था। जब वे किसी से पहली बार मिल रहे होते तो उनका हाथ इतनी तेजी से आगे आता मानो मेहमान से मिलने के लिए वे कितने उतावले थे। पुराने यार दोस्तों से हाथ मिलाते समय उनका हाथ पूरी हार्दिकता से लहराता हुआ आता और ये देख कर दिल जुड़ा जाता। हॉल के दरवाजे पर खड़े हो कर जब वे किसी को विदाई देते तो इसमें खुशी

की खास बात ये रहती कि वे मेहमानों के प्रति इस बात के शुक्रगुजार होते कि उन्होंने मिलने के लिए वक्त निकाला और आने के लिए जहमत उठायी।

ये लंच पार्टियां मौज मजे के मौके जुटाने में बहुत सफल रहतीं। न किसी की टांग खिंचाई होती और न ही किसी को नीचा ही दिखाया जाता। पिताजी शुरू से आखिर तक उत्तेजना से भरे चहकते रहते। प्रोफेसर दे कांडोल ने मेरे पिता का एक सराहनीय और सहानुभूतिपूर्ण खाका खींचते हुए डाउन में अपनी एक विजिट के बारे में बताया था। वे लिखते हैं कि पिता का तौर तरीका वैसा ही था जैसा कि ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज में किसी स्कालर का होता है। मुझे तो ये तुलना बहुत अच्छी नहीं लगी। जब पिताजी सहज होते और अपनी प्राकृतिक अवस्था में होते तो उनकी तुलना किसी फौजी से की जा सकती थी। उस समय वे किसी भी आडम्बर और दिखावे से परे होते थे। उनकी इस आडम्बरहीनता, स्वाभाविकता और सादगी का ही कमाल था कि वे अपने मेहमानों के साथ बातचीत को उन्हीं विषयों पर ले आते जिन पर वे लोग बात करना चाहते हों, और ये बात पिताजी को किसी अजनबी के सामने भी एक शानदार मेजबान के रूप में पेश करती थी। वे जिस कुशलता से बातचीत का बेहतरीन विषय चुनते, वह उनके व्यक्तित्व के सहानुभूतिपूर्ण रवैये और विनम्रता से आता था और उसमें ये तथ्य छुपा रहता कि वे दूसरों के कामों में कितनी दिलचस्पी लेते हैं।

मेरा ख्याल है कि कुछेक लोगों को वे अपनी विनम्रता से हैरान परेशान भी कर बैठते थे। मुझे स्वर्गीय फ्रांसिस बेलफार का किस्सा याद है जब उन्हें एक ऐसे विषय पर अपना ज्ञान बघारने वाली स्थिति में आ जाना पड़ा जिसके बारे में पिताजी का हाथ बिलकुल तंग था।

मेरे पिताजी की बातचीत की विशेषताओं पर उंगली रख कर बताना निहायत ही मुश्किल काम है।

उन्हें इस बात से खासी कोफ्त होती थी कि लोग बाग उनके किस्से दोहरायें। वे अक्सर कह बैठते, 'आपने मुझे ये कहते सुना ही होगा', या 'मुझे लगता है, मैं आपको बता चुका हूँ।' उनकी एक खास आदत थी जिससे वे अपनी बातचीत में एक रोचक प्रभाव ले आते। वे अपना वाक्य बोलना शुरू ही करते कि पहले ही कुछ शब्दों से उन्हें उस बात के पक्ष में या विपक्ष में कुछ और याद आ जाता और जो वे कहने जा रहे होते और इससे वे भटक कर किसी और मुद्दे पर जा पहुंचते और बात कहां की कहां जा पहुंचती। एक उप वाक्य से दूसरा उप वाक्य निकलता जाता और जब तक वे अपना वाक्य खतम कर देते, बातचीत का सिर पैर समझ में न आता कि वे कह ही क्या रहे थे। वे अपने बारे में कहा करते कि किसी के साथ तर्क को आगे बढ़ाने में वे तेजी नहीं दिखा पाते। मेरा ख्याल है, इस बात में सच्चाई भी थी। जब तक बातचीत का विषय वही न होता जिस पर वे उन दिनों काम कर रहे होते तो वे अपने विचारों को तरतीब देने में मुश्किल महसूस करते। ये बात उनके खतों में भी देखी जा सकती है। उन्होंने प्रोफेसर सेम्पर को एकांतवास के प्रभाव के बारे में दो खत लिखे थे और उनमें वे अपने विचारों को तरतीब नहीं दे पाये थे। ये कुछ दिन बाद तभी हो पाया था जब पहला खत भेजा जा चुका था।

जब बातचीत करते हुए वे अपने शब्दों में ही फंस जाते तो उनकी एक खास आदत सामने आती थी। वे वाक्य के पहले शब्द पर हकलाने लगते। और मुझे याद आता है कि इस तरह का हकलाना सिर्फ एक ही अक्षर डब्ल्यू के साथ होता था। ऐसा लगता है कि इस अक्षर के साथ उन्हें खासी मशक्कत करनी पड़ती थी। इसके पीछे उन्होंने ये कारण बताया था कि बचपन में वे डब्ल्यू का उच्चारण नहीं कर पाते थे और एक बार तो उन्हें छः पेंस के सिक्के का लालच भी दिया गया कि व्हाइट वाइन शब्द का उच्चारण करके दिखायें। वे इन्हें राइट राइन ही कहते रहे थे। शायद ये उच्चारण दोष उन्हें इरास्मस डार्विन से विरासत में मिला हो। वे भी हकलाया करते थे।

वे कई बार भाषा संबंधी अन्य भूलें भी कर बैठते और तुलनात्मक वाक्यों में कुछ नये ही गुल खिला देते। वे दरअसल जिस बात पर जोर देना चाहते, उसके चक्कर में गलत वाक्य विन्यास कर बैठते। वे कई बार ऐसी जगह

बात को बढ़ा चढ़ा कर कह देते जहां जरूरत न होती। लेकिन इससे एक बात तो होती ही कि उनकी उदारता और गहरी प्रतिबद्धता के ही दर्शन होते। एकाध बार ऐसा भी हुआ कि वे बात करते हुए गुस्से में आ गये और अपनी बात कह नहीं पाये। वे जानते थे कि गुस्सा विवेक का दुश्मन होता है और वे चाह कर भी ऐसे मामले में कुछ नहीं कर पाते थे।

वे बातचीत में अत्यधिक विनम्र बने रहते। इसका सबूत मैं यही दे सकता हूँ कि एक बार रविवार की दोपहर उनसे मिलने सर जॉन लब्बाक्स के उनके कई मेहमान आये। कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि वे भाषणबाजी में या उपदेश देने जैसी मुद्रा में आये हों, हालांकि उनके पास कहने के लिए बहुत कुछ था। जब वे किसी से छेड़खानी करते और वह भी मजे लेने के लिए तो वे बहुत भले लगते। ऐसे वक्त में वे बेहद हल्के फुल्के स्वभाव वाले और बच्चों जैसे हो जाते और तब उनकी प्रकृति की बारीकी बहुत मुखर हो उठती। इसलिए ऐसा भी होता कि जब वे किसी ऐसी महिला से बात कर रहे होते जिसने उन्हें खुश और मुदित किया हो तो वे उस पर सौ जान न्यौछावर हो जाते और उसके प्रति सम्मान और चुटकी लेने की उनकी भावना देखते ही बनती। उनके व्यक्तित्व में एक निजी किस्म का आत्म सम्मान था जो बहुत अधिक परिचित मुलाकातों में भी डिगता नहीं था। सामने वाले को यही लगता कि कम से कम इस व्यक्ति के साथ तो छूट नहीं ही ली जा सकती है। और न ही मुझे ऐसा कोई वाक्या याद ही आता है कि किसी ने इस तरह की छूट लेने की कोशिश की हो।

जब मेरे पिता से मिलने कई मेहमान एक साथ आ जाते तो वे बहुत ही बढ़िया ढंग से उनसे निपटते। सबसे अलग अलग बात करते या फिर दो तीन मेहमानों को अपनी कुर्सी के आस पास बिठा लेते। इस तरह की बातचीत में आमतौर पर मज़ाक चलता, वे अपनी बात को किसी हंसी भरी बात की तरफ मोड़ देते या फिर खुलापन आ जाता बातचीत में जिससे सबको अच्छा लगता। शायद मेरी स्मृति में हंसी मज़ाक वाले मौके ज्यादा दर्ज हैं। उनकी सबसे अच्छी बातें मिस्टर हक्सले के साथ होती थीं। उनमें गजब का हास्यबोध था। मेरे पिता को उनका ये हास्यबोध बहुत भाता था और वे अक्सर कहते थे, 'मिस्टर हक्सले भी क्या शानदार आदमी हैं।' मेरा ख्याल है, लायेल और सर जोसेफ हूकर के साथ उनकी बातचीत वैज्ञानिक तर्कों के रूप में (एक तरह से झगड़े की तरह) ज्यादा होती थी।

वे कहा करते थे कि इस बात से उन्हें तकलीफ होती है कि जिंदगी के बाद के हिस्से वाले दोस्तों के लिए वे अपने भीतर वह गर्मजोशी नहीं पाते जो युवावस्था के दोस्तों के लिए हुआ करती थी। कैम्ब्रिज से हरबर्ट और फॉक्स को लिखे गये उनके शुरुआती पत्र इस बात का पुख्ता प्रमाण हैं। लेकिन इस बात को मेरे पिता के अलावा और कोई नहीं कहेगा कि अपने दोस्तों के प्रति उनका स्नेह पूरी जिंदगी उसी तरह की गर्मजोशी वाला नहीं रहा। अपने किसी दोस्त के लिए कुछ करते समय वे अपने आपको भी नहीं बकशते थे और उसे अपना कीमती समय और शक्ति सवेच्छा से दिया करते थे। इस बात में कोई शक नहीं कि वे किसी भी सीमा तक जा कर अपने दोस्तों को अपने से बांधे रखने की ताकत रखते थे। उनकी कई शानदार दोस्तियां थीं। लेकिन सर जोसेफ हूकर के साथ उनकी जो दांत काटी दोस्ती थी, वैसी दोस्ती की मिसाल आम तौर पर पुरुषों में कम ही दिखायी देती है। अपनी रीकलेक्शंस में उन्होंने लिखा है, 'मैंने हूकर जैसे प्यारे शायद ही किसी दूसरे इन्सान को जाना हो।'

गांव के लोगों के साथ उनका नाता खुश कर देने वाला था। वे जब भी उनके सम्पर्क में आते तो वे उनके सुख दुख में बराबरी से शामिल होते और उनके जीवन में दिलचस्पी लेते और सब के साथ एक जैसा व्यवहार करते। जब वे डाउन में बसने के लिए आ गये तो कुछ ही अरसे बाद उन्होंने एक मैत्री क्लब स्थापित करने में उनकी मदद की और तीस बरस तक उस क्लब के खजांची बने रहे। वे क्लब की गतिविधियों में खूब रस लेते और बारीकी से और एक दम सही तरीके से उसका हिसाब किताब रखते। क्लब को फलता फूलता देख उन्हें बहुत खुशी होती। हरेक

छुट्टी वाले सोमवार के दिन क्लब बैनर लगाये घर के सामने गाजे बाजे के साथ जुलूस की शकल में निकलता और खूब रौनक रहती। वहां पर वे क्लब के लोगों से मिलते और उन्हें क्लब की शानदार माली हालत के बारे में बताते। इस मौके के लिए पिता जी खास कुछ घिसे पिटे लतीफों के साथ अपना भाषण देते। अक्सर ये होता कि वे बीमार चल रहे होते और इतनी सी कवायद कर पाना भी उनके लिए भारी पड़ता। लेकिन शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि वे उन लोगों से न मिले हों।

वे कोयला क्लब के भी खजांची थे। उन्हें वहां के लिए भी कुछ काम करना पड़ता। वे कुछ बरस तक काउंटी मजिस्ट्रेट के पद पर भी काम करते रहे।

गांव की गतिविधियों में पिता जी की दिलचस्पी के बारे में मिस्टर ब्रॉडी इन्स ने कृपापूर्वक मुझे अपनी स्मृति के खजाने में से ये घटना सुनायी है:

'जब मैं 1846 में डाउन का धर्मगुरु बना तो हम दोनों दोस्त बन गये और ये दोस्ती उनकी मृत्यु तक चलती रही। मेरे और मेरे परिवार के प्रति उनका स्नेह असीम था और बदले में हम भी उनके स्नेह का प्रतिदान करने की कोशिश करते थे।'

चर्च के सभी मामलों में वे हमेशा सक्रियतासे हिस्सा लेते। स्कूलों, धर्मार्थ कामों और दूसरे कारोबारों में वे हमेशा दिल खोल का दान देते और कभी कहीं कोई विवाद हो भी जाता, जैसा कि दूसरे गिरजाघरों में होता रहता था, मुझे यकीन होता था कि वे अपना समर्थन किसे देंगे। वे इस बात के कायल थे कि जहां सचमुच कोई महत्त्वपूर्ण आपत्ति न हो, वहां पर उनका समर्थन पादरी के पक्ष में जाना चाहिये। वही व्यक्ति ऐसा होता है जो सारी स्थितियों को जानता बूझता है और वही मुख्य रूप से जिम्मेवार भी होता है।'

अजनबी लोगों के साथ उनकी मुलाकात सजग और औपचारिक विनम्रता से पगी होती। दरअसल सच तो ये था कि उन्हें अजनबियों के सम्पर्क में आने के मौके ही बहुत कम मिलते और डाउन में जिस तरह के एकांत में वे जी रहे थे, वहां बड़े भीड़ भड़के वाले आयोजनों में वे अपने आपको भ्रम में पड़ा हुआ पाते। उदाहरण के लिए रॉयल सोसाइटी के आयोजनों में वे अपने आपको संख्याओं में खोया हुआ महसूस करते। बाद के बरसों में यह भावना कि उन्हें लोगों को जानना चाहिये और उस पर तुरा यह कि वे नाम भूल जाते थे, इस तरह के मौकों पर उनकी मुश्किलें और बढ़ा देते थे। वे इस बात को समझ नहीं पाते थे कि वे तो फोटो से ही पहचान लिये जायेंगे, और मुझे एक किस्सा याद आता है कि क्रिस्टल पैलेस एक्वेरियम में जब एक अजनबी ने उन्हें पहचान लिया तो वे खासे बेचैन हो उठे थे।

मैं यहां पर थोड़ा सा जिक्र इस बात का भी करना चाहूंगा कि वे अपना काम किस तरह से करते थे। उनकी सबसे खास बात थी समय के लिए सम्मान। वे समय के मूल्य को कभी भी नहीं भूलते थे। इस बात का अंदाजा इस तथ्य से ही लग जायेगा कि वे किस तरह से अपनी छुट्टियों को कम करते जाते थे। और इस बात को ज्यादा साफ तौर पर बताऊं तो वे अपनी कम अवधि की छुट्टियों को तो बिल्कुल खत्म ही कर देते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि समय की बचत करना, काम पूरा करने का एक तरीका होता है। मिनट दर मिनट बचाने के प्रति अपने प्यार को वे चौथाई घंटे और दस मिनट में किये गये काम के बीच के अंतर के जरिये बताते थे। वे कभी कुछ पलों की भी बरबादी भी सहन नहीं कर पाते थे कि काम के समय समय बरबाद तो नहीं ही करना है। मैं अक्सर इस बात को लेकर हैरान रह जाता था कि वे अपनी सामर्थ्य की अंतिम बूंद तक काम करते रहते थे कि तभी अचानक यह कह कर डिक्टेशन देना बंद कर देते थे कि मुझे लगता है कि बस हो गया, मुझे और नहीं करना चाहिये। समय बरबाद न करने की यही उत्कट चाह तब भी सामने आती थी जब वे काम करते समय चुस्ती से अपने हाथ पांव हिलाते। मैंने इस बात को खास तौर पर उस वक्त नोट किया जब वे फलियों की जड़ों पर एक प्रयोग कर रहे थे जिसके लिए

बहुत सावधानी से काम करने की जरूरत थी, जड़ों के ऊपर कार्डों के छोटे छोटे टुकड़े बांधने का काम बहुत सावधानी से और अनिवार्य रूप से धीरे धीरे किया गया, लेकिन बीच के सभी हावभाव बहुत तेज थे। एक ताजी फली लेना, ये देखना कि उसकी जड़ स्वस्थ है, उसे एक पिन पर उठाना और कार्ड पर टिकाना, ये देखना कि ये सीधी खड़ी है आदि। ये सारी प्रक्रियाएं अपने आपको नियंत्रण में रखते हुए उत्सुकता से पूरी की गयीं। वे सामने वाले को ये अहसास दिला देते थे कि वे अपने काम में बहुत आनंद ले रहे हैं और कल्टई बोझ की तरह नहीं कर रहे हैं। मेरी स्मृति में उनकी वह छवि भी अंकित है जब वे किसी और प्रयोग के नतीजे दर्ज कर रहे थे और प्रत्येक जड़ को उत्सुकता से देख रहे थे और उतनी ही तेजी से लिखते जा रहे थे। मुझे याद है, जब वे प्रयोग की वस्तु और अपने नोट्स देख रहे थे तो उनका सिर तेजी से हिल रहा था।

वे किसी भी काम को दोबारा न होने दे कर अपना बहुत सासमय बचा लेते थे। हालांकि वे अपने ऐसे प्रयोग भी धैर्यपूर्वक दोहराते रहते थे जहां कुछ भी हासिल होने वाला नहीं होता था, लेकिन वे इस बात को भी सहन नहीं कर सकते थे कि जो प्रयोग पूरी सावधानी बरतने के बावजूद पहली ही बार में कुछ नतीजे नहीं दे सकता था, उसे दोहराने का मतलब नहीं लेकिन इससे उन्हें लगातार ये चिंता भी बनी रहती थी कि प्रयोग व्यर्थ नहीं जाने चाहिये। वे मानते थे कि प्रयोग पवित्र होते हैं भले ही उनके नतीजे मामूली ही क्यों न हों। वे चाहते थे कि प्रयोगों से जितना अधिक सीख सकें, सीखें ताकि उन्हें वे सिर्फ उसी बिन्दु के आस पास चक्कर न काटते रहें जिसके लिए प्रयोग किया जा रहा था। एक साथ कई चीजों को देखने की उनकी शक्ति गजब की थी। मुझे नहीं लगता कि वे शुरुआती या रफ प्रेक्षणों की तरफ ध्यान देते रहे होंगे कि इन्हें मार्गदर्शक के रूप में और दोहराने के लिए इस्तेमाल में लाया जाये। जो भी प्रयोग किया जाता था, उसका कोई न कोई महत्त्व होता ही था और मुझे याद है, इस बारे में वे इस बात की जरूरत पर बहुत बल देते थे कि किसी भी असफल प्रयोग के नोट्स रखे जायें और इस नियम का वे कड़ाई से पालन करते थे।

अपने लेखन के साहित्यिक पक्ष में भी उन्हें समय बरबाद होने का यही हौवा सताता रहता था और उस वक्त वे जो कुछ भी कर रहे होते थे, उसी उत्साह से उसे निपटाते थे। इस बात ने उन्हें इतना सतर्क बना रखा था कि वे ऐसा लेखन करें कि किसी को बिना वजह दोबारा न पढ़ना पड़े।

>>पीछे>> >>आगे>>

[शीर्ष पर जाएँ](#)

## आत्मकथा चार्ल्स डार्विन

अनुवाद - सूरज प्रकाश

### [अनुक्रम](#)

### अध्याय 3

### [पीछे](#)

उनकी प्राकृतिक प्रवृत्ति ये थी कि आसान तरीके और कुछेक औजार ही अपनाओ। उनकी युवावस्था के बाद से जटिल माइक्रोस्कोप का चलन बहुत बढ़ गया है और ये माइक्रोस्कोप सरल वाले की जगह पर आया है। आजकल हमें ये बात असाधारण लगती है कि जब वे बीगल की यात्रा पर निकले थे तो उनके पास जटिल माइक्रोस्कोप नहीं था। इस मामले में वे राबर्ट ब्राउन की बात को ही मानते हैं जो इस मामले में उस्ताद थे। उन्हें साधारण वाला माइक्रोस्कोप ज्यादा पसंद था और उनका मानना था कि आजकल तो इसे बिल्कुल भुला ही दिया गया है और कि हर आदमी को चाहिये कि जटिल माइक्रोस्कोप को अपनाने से पहले जितना ज्यादा हो सके, इस साधारण वाले यंत्र को ही इस्तेमाल में लाये। अपने एक पत्र में वे इसी मुद्दे पर बात करते हैं और उनकी टिप्पणी है कि मुझे उस आदमी के काम पर ही शक है जो साधारण माइक्रोस्कोप को इस्तेमाल ही नहीं करता।

चीर फाड़ करने वाली उनकी मेज एक मोटे से पुट्टे की बनी हुई थी जिसे अध्ययन कक्ष की खिड़की में फंसा दिया गया था। इसकी ऊंचाई साधारण मेज की तुलना में कम थी ताकि उन्हें उस पर खड़े हो कर काम न करना पड़े। लेकिन मुझे नहीं लगता कि अपनी ऊर्जा बचाने के लिए उन्होंने उसे ऐसा बनवाया होगा। वे चीर फाड़ करने की इस मेज पर एक निहायत ही छोटे से स्टूल पर बैठ कर करते थे। ये स्टूल उनके पिता का हुआ करता था। इसकी सीट एक आड़े खांचे पर घूमती थी। इसमें बड़े आकार के पहिये लगे हुए थे जिससे वे मनचाही दिशा में आसानी से घूम सकते थे। उनके साधारण औजार वगैरह मेज पर ही पड़े रहते थे लेकिन इस ताम ड्राम के साथ ही एक गोल मेज पर दूसरे कई तरह के यंत्र रखे रहते। ये मेज उनके दायें तरफ रखी होती। इस मेज में खुलने वाली दराजें बनी हुई थीं। इन दराजों पर लेबल लगे हुए थे। बेहतरीन औजार, रफ औजार, नमूने, नमूनों की तैयारी, वगैरह। इन दराजों में रखे साज सामान की सबसे अजब बात ये थी कि इस बेकार के कबाड़ को बहुत ही संभाल कर रखा गया था। वे इस सुनी सुनाई बात में पक्का यकीन करते थे कि अगर आप किसी चीज को फेंक देते हैं तो तुरंत ही आपको उसकी जरूरत पड़ जायेगी। बस, यही सोच कर वे सब कुछ जमा करते चलते थे।

हां, अगर किसी की निगाह मेज पर फैले उनके साज सामान वगैरह पर पड़ जाती तो वह उनकी सादगी, जोड़ तोड़ कर बनाये गये सामान और अजीबो गरीब चीजों को देखकर हैरत में पड़ जाता।

उनकी दायीं तरफ शेल्फ बने हुए थे जिनमें कई तरह की चीजें, प्लेटें, बीजों को खमीरा करने के लिए बिस्कुटों के टिन के बक्से, रेत से भरी प्लेटें वगैरह भरे हुए थे। इस बात को देखते हुए कि वे अपने जरूरी काम काज में कितने



सलीकापसंद और तौर तरीके वाले इन्सान थे, इस बात को देख कर हैरानी होती थी कि उन्होंने कितनी अल्लम गल्लम चीजें जुटा रखी थीं। मिसाल के तौर पर सामान रखने के लिए भीतर से काला किये हुए सही आकार के थिडबूबे रखने के बजाये वे कुछ भी ऐसा तलाशते जिस पर भीतर से जूता पालिश करके काला किया जा सके। बीजों के अंकुरण के लिए गिलासों के लिए उनके पास ढक्कन नहीं थे। इनके लिए वे किसी भी उल्टी सीधी चीज को इस्तेमाल में ले आते। कई बार तो ये चीजें इतने अजीब आकार की होतीं कि पूछिये मत। लेकिन उनके ज्यादातर प्रयोग सरल प्रकार के होते जिनके लिए लम्बे चौड़े ताम्र ड्राम की जरूरत न पड़ती। लेकिन मेरा ख्याल है कि इस मायने में उनकी ये आदत अपनी शक्तियों पर काबू पाने की ललक की वजह से ज्यादा रहती होगी बजाये जरूरी चीजों पर उसे बरबाद करने की।

यहां मैं चीजों पर निशान लगाने की उनकी आदत के बारे में बताना चाहूंगा। अगर उन्हें बहुत सारी चीजों में फर्क करना होता, मसलन, पत्तियां, बीज, फूल वगैरह तो वे उनके चारों तरफ अलग अलग रंग के धागे बांध देते। ये तरीका वे आम तौर पर तब अपनाते जब उनके सामने फर्क करने वाली दो ही चीजें होतीं। मिसाल के तौर पर अगर उन्हें क्रास और स्वयं पुष्पित होने वाले फूल के बीच फर्क दिखाना होता तो उन पर वे काला और सफेद धागा बांधते। मुझे याद है एक बार उन्होंने दो कैप्सूलों के बीच फर्क करना था तो एक ही ट्रे में रखे कैप्सूलों पर उन्होंने काले और सफेद धागे बांध रखे थे। अगर उन्हें एक ही गमले में उगाये गये दो बीजों के बीच के फर्क का अध्ययन करना होता तो वे उनके बीच जस्ते की पट्टी खड़ी कर देते और उन पर जस्ते के लेबल लगा देते जिनसे प्रयोग के सारे ब्योरे मिल जाते। ये उनकी एक तरफ मेज पर रखे रहते जिससे उन्हें पता चल जाता कि कौन सा क्रास है और कौन सा स्वयं पुष्पित।

संकरण के इन प्रयोगों में यह साफ प्रकट होता था कि प्रत्येक प्रयोग विशेष के प्रति उन्हें कितना लगाव था, और उससे भी ज्यादा उनका उत्साह कि प्रयोग से प्राप्त फल को भी नष्ट न होने दिया जाए - वे इतने सावधान रहते थे कि कोई भी कैप्सूल कभी किसी गलत ट्रे में न चला जाए, तथा ऐसी ही बहुत सी बातें। मुझे उनकी वह मुखमुद्रा कभी नहीं भूलती कि साधारण माइक्रोस्कोप के नीचे वे कितनी एकाग्रता से बीजों को गिनते थे - गिनती जैसा साधारण काम और उसमें भी इतने तल्लीन। मुझे लगता है कि प्रत्येक बीज उनके सामने एक व्यक्ति जैसा बन जाता था और उन्हें डर रहता था कि कहीं कोई बीज गलत ढेर में न चला जाए, और यह सब तौर तरीका उनके कार्य को एक खेल का रूप प्रदान कर देता था। उपकरणों पर भी उन्हें पूरा भरोसा था, और स्वाभाविक रूप से वे किसी भी पैमाने, नापने वाले गिलास आदि की शुद्धता पर संदेह नहीं करते थे। उन्हें तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्हें यह पता लगा कि उनके एक माइक्रोमीटर और दूसरे के बीच काफी अन्तर है। अपने अधिकांश उपकरणों में उन्हें कोई बहुत अधिक परिशुद्धता नहीं चाहिए थी, और उनके पास कोई बेहतर पैमाना था भी नहीं। बस एक पुराना सा तीन-फुट पैमाना, जो सारे कुनबे का साझा पैमाना था। यह लगातार एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता रहता था, और सारे घर में इस पैमाने की जगह तय थी, बशर्ते सबसे अन्त में उठाने वाले व्यक्ति ने इसे सही सलामत उसी जगह पर रख दिया हो। पौधों की ऊँचाई नापने के लिए उनके पास सात फुट की छड़ी थी, जिसे गाँव के ही बढ़ई ने तैयार किया था। बाद में कागज के पैमानों का प्रयोग करने लगे जिन पर मिलीमीटर तक के निशान लगे थे। यह सब बताने का मतलब यह नहीं है कि इस प्रकार के उपकरणों को उपयोग में लेने के कारण उनकी पैमाइश में शुद्धता नहीं रहती थी, बल्कि मैं यह बताना चाहता हूँ कि उनके उपकरण कितने सरल थे - और उपकरण बनाने वाले पर उन्हें कितना भरोसा था, जिसका पूरा व्यवसाय ही उनके लिए रहस्य था।

उनकी दिमागी खासियत में से कुछेक मुझे अभी भी याद आती हैं, और इनका असर उनके काम के तरीके पर भी था। उनके दिमाग की एक खासियत और बहुत बड़ी उपयोगिता यह थी कि वे हमेशा कुछ न कुछ तलाशने में लगे रहते थे। यह उनके दिमाग की ही कुछ ताकत थी जो अपवादों को भी नजरअंदाज नहीं करती थी। यदि कोई अपवाद खास हो या बार बार होने लगे तो कोई भी उस पर ध्यान देगा लेकिन किसी भी अपवाद को वे पहली ही बार में पकड़ लेते थे, और यही उनकी खासियत थी। कुछ बातें ऐसी होती थीं जो उनके वर्तमान काम के बारे में बहुत ही सामान्य होती थीं, जिन्हें उनसे पहले के बहुत से लोगों ने लगभग अनदेखा-सा ही किया होता था या फिर जिनकी अधूरी व्याख्या की होती थी, जो कि कोई व्याख्या नहीं कहलाती, और इन्हीं बातों को पकड़ कर वे अपना अध्ययन शुरू करते थे। एक तरह से देखा जाए तो इस तरीके में कुछ खास नज़र नहीं आता, लेकिन उन्होंने बहुत-सी खोजबीन इसी तरीके से की थी। मैं यह सब इसलिए बता रहा हूँ कि मैं उन्हें जिस प्रकार से काम करते हुए देखता था, तो प्रयोगकर्ता के रूप में इस ताकत की कीमत ने मुझ पर बहुत असर डाला था।

उनके प्रयोगात्मक कार्यों की एक और खासियत थी कि वे किसी एक विषय पर जैसे चिपक जाते थे, वे अपने इस धैर्य के लिए कई बार क्षमा माँगते थे, और कहते थे कि बस वे इस काम में हारना नहीं चाहते, भले ही यह उनके लिए कमज़ोरी का ही सबब क्यों न बन जाता हो। वे कई बार यह कहावत कह उठते थे, 'गुड़ पर चींटे सा चिपक गया हूँ।'

और मैं सोचता हूँ कि यह 'चींटे सा हठीला' उनके दिमाग के खाके को उनके अनथक प्रयासों की तुलना में कहीं ज्यादा बेहतर ढंग से प्रकट करता था। अनथक प्रयास तो मुश्किल से ही उनकी उस बलवती इच्छा को प्रकट कर पाता जो सत्य को उद्घाटित करने के लिए उनके मन में होती थी। वे अक्सर कहते थे कि किसी भी व्यक्ति के लिए यह जानना ज़रूरी है कि वह सही मौका कौन-सा है जब अपनी तलाश खत्म की जाए। और मैं समझता हूँ कि यह उनकी प्रवृत्ति में था कि यह सही मौका अक्सर पीछे छूट जाता था और वे अपने अनथक प्रयास के लिए माफी माँगते थे और उनका काम में लगना गुड़ पर चींटे सा चिपकना हो जाता था। वे अक्सर यह भी कहते थे कि कोई भी व्यक्ति अच्छा प्रेक्षक तब तक नहीं बन सकता जब तक कि वह सक्रिय सिद्धान्तवादी न हो। यह बात याद आते ही मैं फिर से उनकी वह भावना याद करने लगता हूँ जिसके तहत वे अपवादों को तुरन्त पकड़ते थे। लगता है कि उनमें सिद्धान्तप्रियता इतनी थी कि वह जरा से भी विचलन को देखते ही सक्रिय हो उठते थे। इसलिए वास्तव में यह होता था कि छोटी से छोटी चीज भी उनमें सिद्धान्तों को सक्रिय कर देती थी, और इस प्रकार कोई भी तथ्य महत्त्वपूर्ण हो उठता था। इस प्रकार सहज ही उनके मन में कई सिद्धान्त मूर्त रूप ले चुके थे, लेकिन कल्पनाओं के साथ ही उनमें निर्णय करने का विवेक भी था जो इस प्रकार की विचित्रताओं को निष्क्रिय भी कर देता था। वे अपने सिद्धान्तों के प्रति ईमानदार थे, और उन्हें समझे बिना कभी भी नकारते नहीं थे। इस प्रकार से देखा जाए तो वे ऐसी बातों पर भी परीक्षण करने को आतुर रहते थे, जिन्हें अन्य लोग परीक्षण के लायक ही नहीं समझते थे। अपने कुछ परीक्षणों को वे मूढ़ परीक्षण कहते थे, और इनमें आनन्द भी लेते थे। मिसाल के तौर पर यह घटना ही लीजिए कि एक अनोखे किस्म के पौधे के बीजइपत्र मेज के हिलने डुलने के कंपन के प्रति खास संवेदना रखते हैं तो उन्होंने यह कल्पना की शायद ये ध्वनि के कंपनों को भी पकड़ें और इसलिए मुझे कहा गया कि मैं उस पौधे के पास बेसून बजाऊँ।

कोई भी प्रयोग करने की बलवती इच्छा उनमें थी, और मुझे याद है जिस प्रकार वे कहा करते थे कि, 'जब तक मैं इसका परीक्षण नहीं कर लूँगा मुझे चैन नहीं पड़ेगा,' जैसे कोई बाहरी शक्ति उन्हें प्रेरित कर रही हो। केवल कारण-

परक कार्यों की तुलना में प्रयोगात्मक कार्य उन्हें अधिक पसंद थे, और जब कभी वे अपनी किसी ऐसी किताब में उलझे होते थे जिसमें तर्क और तथ्यों को सूत्रबद्ध करना अपेक्षित होता था तो वे महसूस कर लेते थे कि प्रयोगात्मक कार्यों को विराम या अवकाश दिया जाए। इस प्रकार, वेरिएशनऑफएनिमल्सएण्डप्लान्ट्स पर 1860इ61 के दौरान काम करते हुए उन्होंने ऑर्चिड का निषेचन प्रयोग भी किया और इन पर बहुत ज्यादा समय लगाने के लिए खुद को बेकार ही उलझा हुआ भी कहा। यह सोचना रुचिकर हो सकता है कि शोध के इस खास काम को फुर्सत में करने के बजाय और ज्यादा गंभीर कार्य के रूप में लेना चाहिए था। इस दौरान हूकर को लिखे अपने एक खत में उन्होंने बताया, 'भगवान मुझे माफ करे कि मैं इतना आलसी क्यों हूँ; जबकि मैं पागलपन भरे दूसरे काम तो कर ही रहा हूँ।' इन पत्रों में उन्होंने बताया था कि निषेचन के प्रति पौधों की अनुकूलन क्षमता के समझने में उन्हें कितना आनन्द आता था। अपने किसी एक खत में उन्होंने लिखा था कि डीसेन्टऑफमैन से विराम लेते हुए उनका विचार था कि सन्ड/ूपर काम किया जाए। अपने रीक्लेक्शन में उन्होंने बताया है कि विषम वार्तिकता की समस्या का समाधान करने में उन्हें कितनी खुशी हुई। एक बार मैंने उन्हें यह कहते सुना था कि दक्षिण अफ्रीका के भूविज्ञान ने उन्हें सबसे ज्यादा आनन्द दिया। शायद कार्य करने में यह खुशी प्राप्त करने के लिए बड़ी पैनी निगाह चाहिए जो अवलोकन को एक ताकत देती है, जो कि उनमें थी और उनके दूसरे गुणों की तरह ही उत्कृष्ट थी।

किताबों के लिए उनके मन में कोई आदर नहीं था। किताबें महज एक साधन थीं, इसलिए वे कभी भी उन पर जिल्द नहीं चढ़वाते थे, और किसी किताब के पन्ने निकल जाते थे तो वे चिमटी लगाकर रख देते थे। मुलर की बेफ्रचटंग नामक किताब को बचाने के लिए उन्होंने बस एक चिमटी भर लगा दी थी। इसी प्रकार वे किसी बहुत मोटी किताब को फाड़कर दो कर देते थे, ताकि उसे पकड़ कर पढ़ने में आसानी रहे। वे तो यहाँ तक कहते थे कि उन्होंने लेयेल को कहा कि वह अपनी किताब का नया संस्करण दो खण्डों में प्रकाशित कराए, क्योंकि उसकी मोटी किताब को उन्होंने दो फाड़ कर दिया था। पेम्फलेटों की तो और भी दुर्दशा होती थी। अपने कमरे में जगह बचाने के लिए केवल अपने मतलब के कामों को छोड़कर शेष सारे कागज फौरन कूड़ेदान के हवाले कर देते थे। नतीजा, उनकी लायब्रेरी बहुत सजी संवरी नहीं थी, बस निहायत ही ज़रूरी किताबों का संग्रह था।

किताबों को पढ़ने का उनका अपना ही तरीका था। यही हाल काम के पेम्फलेटों का था। उनकी एक अलमारी थी जिस पर वे किताबें रखी रहती थी, जिन्हें अभी तक पढ़ा नहीं गया था। किताबों को पढ़ने के बाद दूसरी अलमारी में रख दिया जाता था, और बाद में उनका वर्गीकरण होता था। वे अपनी उन किताबों पर खीझते भी थे, जिन्हें वे पढ़ नहीं पाए थे, क्योंकि वे यह जानते थे कि इन किताबों को कभी पढ़ा भी नहीं जाएगा। कुछ किताबें तो ऐसी थीं जो फौरन ही दूसरे ढेर में पहुँचा दी जाती थीं, और उनके पीछे एक बड़ा सा सिफर बना दिया जाता था। इसका मतलब होता था कि इसमें किसी भी स्थान पर कोई खास बात नहीं है या फिर किसी किताब पर लिख देते थे कि पढ़ी नहीं, या फिर बस उलट-पलट लिया। पढ़ ली गई किताबें उस दिन का इन्तजार करती पड़ी रहती थीं कि कब यह अलमारी भरेगी और उनका वर्गीकरण होगा। यह काम उन्हें निहायत ही नापसन्द था और जब मज़बूरी में करना ज़रूरी हो ही जाता था तो बड़ी ही तल्ख आवाज में कहते 'इन किताबों को जल्द निपटाना होगा।'

किताबों को पढ़ते समय वे अपने काम की बातों पर निशान लगाते जाते थे। कोई किताब या पुस्तिका पढ़ते समय पृष्ठ पर ही वे पेन्सिल से निशान लगाते जाते थे और अन्त में निशान लगाए हुए पृष्ठों की तालिका बना देते थे। इसके बाद वर्गीकृत करके रखते समय निशान लगाए गए पृष्ठों को फिर से देख लिया जाता था और इस प्रकार

उस किताब का सारांश मोटे तौर पर तैयार कर लिया जाता था। अलग-अलग विषयों पर लिखे गए तथ्यों को पहले से लिखी बातों के साथ जोड़ लिया जाता था। अपने सारांशों का वे एक सेट और भी तैयार करते थे, लेकिन यह विषयानुसार नहीं होता था बल्कि पत्रिकाओं के अनुसार होता था, जिससे वे सारांश लिए जाते थे। बड़ी मात्रा में तथ्यों का संग्रह करते समय पहले तो वे यही करते थे कि जर्नल की पूरी शृंखला को पढ़ते जाते और सारांश तैयार करते जाते थे।

अपने शुरुआती खतों में उन्होंने लिखा था कि स्पीसीज के बारे में अपनी किताब के लिए तथ्यों का संग्रह करते समय उन्होंने कई कापियाँ भर डालीं, लेकिन यह काफी पहले की बात है। बाद में वे पोर्टफोलियो बनाने लगे थे, जिसका ज़िक्र उन्होंने रिकलेक्शन में किया है। पिताजी और एम.टी केन्दोल को इस बात पर आपस में खुशी जाहिर करने का मौका मिलता था कि दोनों ही ने तथ्यों को वर्गीकृत करने की योजना एक जैसी बनाई थी। टी केन्दोल ने अपनी पुस्तक 'फितालॉजी' में अपने तौर तरीकों का वर्णन किया, इसी बात का उल्लेख मेरे पिता के बारे में करते हुए उन्होंने लिखा कि डाउन में इसी को रूपाकार लेते हुए देखकर उन्हें काफी सन्तोष हुआ।

इन पोर्टफोलियो में कई दर्जन तो लिखे हुए कागजों से भरे थे। इनके अलावा बहुत से बंडल पांडुलिपियों के थे - कुछ पर इस्तेमाल हुई लिखकर अलग रख दिया गया था। वे अपने लिखे हुए कागजों की बड़ी कद्र करते थे और यह भी डरते थे कि कहीं इनमें आग न लग जाए। मुझे याद है कि कहीं से भी आग लगने की चेतावनी मिलते ही वे बड़े ही अस्त-व्यस्त हो जाते थे और मुझसे कहने लगते थे, - देखो बेटा, बहुत होशियार रहना और ध्यान रहे कि ये किताबें और कागज अगर नष्ट हुए तो मेरा बाकी का जीवन दूभर हो जाएगा।

यदि कोई पाण्डुलिपि नष्ट हो जाती थी, तो भी उनके दिल से यही आह निकलती थी - 'शुक्र है कि मेरे पास इसकी नकल रखी है वरना इसका नुकसान तो मुझे मार ही डालता'। कोई किताब लिखते समय उनका ज्यादा समय और मेहनत लगती थी सारे विषय की रूपरेखा या योजना बनाने में, फिर कुछ समय लगता था प्रत्येक शीर्षक के विस्तार में और उसे उपशीर्षकों में बाँटने में, जैसा कि उन्होंने रिकलेक्शन में उल्लेख भी किया है। मुझे लगता है सारी योजना को तैयार करना उनके अपने तर्क वितर्क की आधार भूमि तैयार करने के लिए नहीं होता था बल्कि समूची योजना की प्रस्तुति के लिए और तथ्यों की व्यवस्था के लिए होता था। अपनी पुस्तक 'लाइफ ऑफ़ डरेस्मस डार्विन' में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है। पहले यह पंक्तियों पर रही और फिर किस प्रकार से इसने पुस्तक का आकार लिया - उसका यह सारा रूपान्तरण हमने अपनी आंखों से देखा था। इस सारी व्यवस्था को बाद में बदल दिया गया, क्योंकि यह बहुत ही औपचारिक लगने लगी थी। यह इतनी वर्गीकृत थी कि उनके दादा का सम्पूर्ण चरित्र प्रस्तुत करने के स्थान पर उनके गुणों की फेहरिस्त ज्यादा लगने लगी थी।

यह तो अन्त के कुछ वर्षों में उन्होंने अपनी लेखन योजना में बदलाव किया था। रिकलेक्शन में उन्होंने बताया है कि अब वे शैली पर बिना कोई ध्यान दिए पूरी किताब की रफ़ कापी तैयार करना ज्यादा सुविधाजनक समझते हैं - यह उनकी सनक थी कि हमेशा पुराने प्रूफ या पांडुलिपियों के पीछे ही लिखते थे क्योंकि अच्छे कागज पर लिखते समय अतिरिक्त सावधानी रखने के चक्कर में वे लिख नहीं पाते थे। इसके बाद वे रफ़ कापी पर फिर से चिन्तन मनन करते और इसकी साफ नकल तैयार करते थे। इस प्रयोजन के लिए वे चौड़ी लाइनों वाले फुलस्केप कागज का प्रयोग करते थे। चौड़ी लाइनों के कारण खुलाड़खुला लिखना पड़ता था और बाद में किसी भी किस्म की काँटइज़ॉट या संशोधन आसानी से हो जाते थे। साफ़इसाफ़ तैयार की गयी नकल में एक बार फिर संशोधन किया

जाता, उसकी एक और नकल तैयार की जाती और तब कहीं जाकर उसे छपने के लिए भेजा जाता था। नकलनवीसी का काम मि. ई. नार्मन किया करते थे। वे यह काम काफी पहले तब से करते आ रहे थे जब वे डाउन में गाँव के स्कूल मास्टर हुआ करते थे। मेरे पिताजी तो मिस्टर नार्मन की लिखाई के ऐसे मुरीद थे कि जब तक मि. नार्मन किसी नकल को तैयार नहीं कर देते थे, तब तक वे पांडुलिपि में संशोधन के लिए कलम नहीं उठाते थे, भले ही वह नकल हम बच्चों ने ही क्यों न तैयार की हो। मि. नार्मन जब नकल तैयार कर देते थे तब पिताजी उस नकल को एक बार फिर देखते थे और तब वह प्रकाशन के लिए भेजी जाती थी। इसके बाद प्रूफ देखने का काम शुरू होता था जो कि पिताजी को निहायत ही थकाऊ काम लगता था।

जिस समय किताब 'स्लिप' स्तर पर होती थी तो वे दूसरों से सुझाव और संशोधन पाकर बहुत खुश होते थे। इस प्रकार मेरी माँ ने 'ओरिजिन' के प्रूफ देखे थे। बाद की कुछ किताबों में मेरी बहन मिसेज लिचफील्ड ने ज्यादातर संशोधन किए। बहन की शादी के बाद अधिकांश काम मेरी माँ के हिस्से में आ गया।

बहन लिचफील्ड लिखती हैं : 'यह सारा काम अपने आप में बहुत ही रुचिकर था और उनके लिए काम करना सोच कर ही रोमांचित हो उठती हूँ। पिताजी समझने के लिए इतने लालायित रहते थे कि किसी भी सुझाव को वे एक सुधार मानते थे और बताने वाले द्वारा की गयी मेहनत के प्रति अभिभूत हो जाते थे। मुझे जहाँ तक याद आता है तो वे मेरे द्वारा किए गए सुधारों को मुझे बताना कभी भी नहीं भूले, और यदि मेरे किसी संशोधन से वे सहमत नहीं होते थे, तो लगभग स्वयं से माफी मांगने जैसी स्थिति में आ जाते थे। मैं समझती हूँ कि इस प्रकार काम करके मैंने जितना उनकी प्रकृति की शालीनता और उदात्तता को समझा, शायद किसी और तरीके से न समझ पाती।

शायद सबसे सामान्य सुधार वही होते थे, जो कारण तत्त्व में जरूरी सहसम्बन्ध न होने के बारे में होते थे, और इनके न होने का कारण यही था कि उन्हें विषय का पूरा ज्ञान था। ऐसा नहीं था कि विचारों के अनुक्रम में कोई कमजोरी या कमी थी, बल्कि उन्हें यह आभास नहीं रह जाता था कि जिस शब्द का प्रयोग उन्होंने किया वह उनके विचारों को पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं कर पाया। कई बार वे एक ही वाक्य में बहुत कुछ कह डालते थे और इसीलिए वाक्य को तोड़ना पड़ता था।

कुल मिलाकर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे पिता अपने लेखन कार्य के साहित्यिक या कलात्मक पक्ष पर जितना परिश्रम करते थे वह काफी ज्यादा होता था। अंग्रेजी में लिखते समय उन्हें कई बार जब दिक्कत आती थी तो वे खुद पर ही हंसते या खीझते थे। मिसाल के तौर पर अगर किसी वाक्य का विन्यास गलत तरीके से सम्भव था तो वे गलत तरीका ही अपनाते थे। एक बार परिवार को जो दिक्कत आयी उसे देखकर पिताजी को असीम संतोष और खुशी भी हुई। दुर्बोध, उलझे हुए वाक्यों, और अन्य दोषों को सही करने तथा उन पर हंसने में पिताजी को बड़ी खुशी होती थी और इस प्रकार वे अपने काम की आलोचना का बदला ले लेते थे। युवा लेखकों को मिस मार्टिन की सलाह का उल्लेख वे बहुत अचरज से करते थे कि सीधे ही लिखते जाओ और बिना किसी संशोधन के पांडुलिपि छापेखाने में भिजवा दो। लेकिन कुछ मामलों में वे खुद भी ऐसा ही कर बैठते थे। जब कोई वाक्य उम्मीद से ज्यादा उलझ जाता था तो वे स्वयं से ही पूछ बैठते थे, 'अब आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?' और इसका जो उत्तर वे स्वयं ही लिखते थे वह भ्रम को कई बार दूर कर देता था।

उनकी लेखन शैली की काफी तारीफ होती थी। एक अच्छे आलोचक ने एक बार मुझसे कहा था कि यह शैली कुछ जमती नहीं। उनकी शैली बहुत ही खुली खुली और स्पष्ट थी और यह उनकी प्रकृति को ही सामने रखती थी। सरलता तो इतनी कि एकदम नौसिखिये के आसपास और इसमें किसी किस्म का दुराव छिपाव नहीं था। पिताजी को इस सामान्य विचार पर तनिक भी भरोसा नहीं था कि शास्त्राध्य विद्वान को अच्छी अंग्रेजी लिखनी चाहिए, बल्कि वे सोचते थे कि मामला ठीक उल्टा ही रहता है। लेखन में जब कोई ठोस व्याख्या उन्हें करती होती थी तो वही प्रवृत्ति अपनाते थे जो बातचीत में करते समय रखते थे। 'ओरिजिन' के पेज 440 पर सिरीपीड लारवा का वर्णन कुछ इस प्रकार से है, 'तैरने की अभ्यस्त छह जोड़ी सुन्दर टाँगें, एक जोड़ी अनोखी विवृत आँखें और बहुत ही जटिल स्पर्श शृंग।' इस वाक्य के लिए हम उन पर हँसा करते थे, और कहते थे कि यह तो एक विज्ञापन की तरह से है। अपने विचार को अत्यधिक व्याख्या के शिखर पर पहुँचाने की उनकी प्रवृत्ति को कभी भी यह भय नहीं हुआ कि उनके लेखन में कहीं यह मज़ाक तो नहीं लग रहा है।

अपने पाठक के प्रति उनका रवैया काफी शालीन और समाधान परक रहता था, और शायद यह आंशिक रूप से उनका गुण था जो उनके व्यक्तिगत मृदुल चरित्र को उन लोगों के सामने भी प्रस्तुत कर देता था, जिन्होंने उन्हें कभी देखा नहीं। मैं भी इसे एक उत्सुकता भरा तथ्य मानता हूँ कि जिसने जीव विज्ञान का रूप ही बदल दिया, और इन अर्थों में जो आधुनिकतावादियों का मुखिया बन गया, उसने इतने गैर आधुनिक तरीके और भावना से एकदम दकियानूसी बातें लिखी होंगी। उनकी किताबों को पढ़ कर आधुनिक घराने के लेखकों का कम और प्राचीन प्रकृतिवादियों का आभास अधिक मिलता था। पुराने मत से देखा जाए तो वे शब्दों के प्रकृतिवादी थे, अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो विज्ञान की कई शाखाओं पर शोध करे न कि किसी विशेष विषय पर। इस प्रकार उन्होंने विशेष विषयों के नए प्रभाग तय कर दिए थे, जैसे कि फूलों का निषेचन, कीटभक्षी पौधे आदि। जो कुछ अपने पाठक के सामने वे प्रस्तुत करते थे उससे यह आभास नहीं होता था कि यह किसी विशेषज्ञ का लेख है। पाठक को ऐसा मित्रवत लगता था जैसे कि कोई सज्जन उसके सामने बातें कर रहा हो न कि ऐसा कि शिष्यों के सामने कोई प्रोफेसर व्याख्यान दे रहा हो। ओरिजिन जैसी किताब की ध्वनि मनमोहक ही नहीं, एक तरह से भाव-प्रधान है। यह एक ऐसे व्यक्ति का बलाघात है जो अपने विचारों की सच्चाई के प्रति आश्वस्त है, लेकिन फिर भी इसमें ऐसी शैली हो, जो दूसरों को प्रभावित नहीं करना चाहते। यह तो पाठक पर अपने विचार लादने वाली किसी दुराग्रही की शैली से एकदम उलट है। यदि पाठक के मन में कोई भ्रम होता भी था तो इसके लिए उसे तिरस्कृत नहीं करते थे, बल्कि उसके संशयों का निवारण बड़े ही धैर्यपूर्वक किया जाता था। उनके विचारों में सदा ही संशयी पाठक या शायद कोई अज्ञानी पाठक सदा ही मौजूद रहता था। शायद इसी विचार का नतीजा था कि वे ऐसे स्थलों पर काफी श्रम करते थे, जिन पर उन्हें लगता था कि यह उनके पाठक को भ्रमित कर सकता है, और वहाँ पर वे ऐसी रोचकता लाते या उसे जूझने से बचाते कि पाठक पढ़ने के लिए लालायित हो उठता था।

इसी वजह से वे अपनी किताबों में चित्र या उदाहरण देने में भी काफी रुचि लेते। यही नहीं, मुझे लगता है उनकी नज़र में इनकी बहुत अहमियत थी। उनकी शुरुआती किताबों के चित्र व्यवसायी चित्रकारों ने तैयार किए थे। एनिमल्स एन्ड प्लान्ट्स, दीडीसेन्ट ऑफ मैन और द एक्सप्रेसन ऑफ इमोशन्स इन्हीं चित्रकारों के चित्र थे। दूसरी ओर, क्लाइम्बिंग प्लान्ट्स, इन्सेक्टीवोरस प्लान्ट्स, दिमूवमेन्ट्स ऑफ प्लान्ट्स और फॉर्म्स ऑफ फ्लावर्स के चित्रों को उनके बच्चों ने तैयार किया था, जिनमें सबसे ज्यादा चित्र मेरे भाई जॉर्ज ने तैयार किए थे। उनके लिए चित्र बनाना बड़ी ही खुशी की बात हुआ करती थी, क्योंकि बहुत सामान्य इसी मेहनत पर वे दिल खोल कर तारीफ किया करते थे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि उनकी एक बहू ने जब एक चित्र तैयार किया तो उन्होंने सच्चे मन

से तारीफ करते हुए कहा, '---- से कहना कि माइकल एंजेलो भी इसके आगे फीका पड़ गया है।' वे तारीफ के ही पुल बाँधकर नहीं रह जाते थे बल्कि चित्रों को बड़ी बारीकी से देखते थे और यदि कोई कमी या लापरवाही रह गई होती थी तो उसे भी पकड़ लेते थे।

पिताजी को काम के लम्बा खिंच जाने का भय भी रहता था। वैरिएशनऑफएनिमल्सएन्डप्लान्ट्स का लेखन कार्य जब बढ़ता जा रहा था, तो मुझे याद है कि एक दिन वे कह उठे - ट्रिस्ट्रम शैन्डी के शब्द एकदम ठीक ही हैं, 'कोई कुछ नहीं कहेगा, चलो मैं बारहपेजी लिखता हूँ।'

दूसरे लेखकों के बारे में भी वे ठीक उतनी ही फिक्र करते थे जितनी अपने पाठक की। दूसरे सभी लेखकों के लिए वे कहते थे कि इन्हें भी सम्मान की दरकार है। इसकी एक मिसाल पेश करता हूँ - ड्रोसेरा के बारे में श्री---- के प्रयोगों को देखते हुए उन्होंने लेखक के बारे में काफी सामान्य विचार बना रखे थे, लेकिन यदि कहीं भी उन लेखक महोदय के बारे में कभी कुछ कहना होता था तो पिताजी ऐसे विचार प्रकट करते थे कि किसी को भी उनके मनोभावों का आभास नहीं हो पाता था। दूसरे मामलों में वे लापरवाह किस्म के भ्रमित लेखकों के साथ ऐसा व्यवहार करते थे, मानो दोष लेखक का नहीं बल्कि स्वयं उन्हीं का हो कि वे विषय को समझ नहीं सके। आदर की इस सामान्य ध्वनि के अलावा वे उद्धृत लेख की मूल्यवत्ता पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने का उनका अपना ही तरीका था या फिर किसी व्यक्तिगत जानकारी पर उनके अपने ही विचार थे।

वे जो कुछ पढ़ते थे उसके बारे में बहुत ही आदर की भावना रखते थे, लेकिन उनके मन में यह भावना भी जरूर रहती थी कि लेख को लिखने वाले भरोसेमन्द हैं या नहीं। वे जो भी किताब पढ़ते थे उसके लेखक की शुद्धता के बारे में एक खास विचार बना लेते थे और तर्क-वितर्क या उदाहरण के रूप में तथ्यों का चयन करते समय अपने विवेक का प्रयोग करते थे। मुझे तो यही लगता है कि किसी भी लेखक की विश्वसनीयता के बारे में अपनी इस विवेक शक्ति को वे बहुत ही अहमियत देते थे।

उनमें आदर करने की प्रबल भावना भी थी, जो कि अक्सर लेखकों में होती है। और यही नहीं, किसी भी दूसरे लेखक का उदाहरण देने में उन्हें डर भी लगता था। आदर और ख्याति के बारे में मोह का वे विरोध भी करते थे। अपने खतों में कई बार उन्होंने खुद को ही दोषी ठहराया है कि अपनी किताबों की सफलता से उन्हें कितनी खुशी मिलती थी, और यह तो एक तरह से अपने ही विचारों और सिद्धान्तों की हत्या करना था - क्योंकि वे मानते थे कि सच से प्रेम करो और ख्याति या प्रसिद्धि की चिन्ता हरगिज मत करो। सर जे.हूकर को लिखते समय कुछ एक खतों को उन्होंने शेखी बघारने वाला खत कहा है। एक खत में तो अपनी विनम्रता की भावना के लिए लालसा की भी हंसी उड़ाई है। 'लाइफ' के दसवें अध्याय में ऐसा ही एक रोचक खत है जो मेरी माँ को उन्होंने समर्पित करते हुए लिखा और कहा कि यदि उनकी मृत्यु हो जाती है तो उद्‌विकास पर उनके पहले निबन्ध की पांडुलिपि को छपवाने के लिए उन्हें कितनी सावधानी से काम करना है। इस पूरे खत में केवल यही इच्छा प्रकट की गयी थी कि यह सिद्धान्त ज्ञान में योगदान करने वाला होना चाहिए। अपनी व्यक्तिगत प्रसिद्धि की तो कहीं कोई बात ही नहीं चलाई गयी थी। उनमें सफलता की प्रबल आकांक्षा थी जो कि एक व्यक्ति में होनी भी चाहिए, लेकिन ओरिजिन के प्रकाशन के समय यह स्पष्ट था कि वे लेयल, हूकर, हक्सले और एसा ग्रे जैसे विद्वानों से प्रशंसा पाकर वे बहुत खुश हुए थे, लेकिन बाद में जो नाम उन्होंने कमाया उसका सपना या इच्छा उन्होंने कभी भी नहीं संजोयी थी।

प्रसिद्धि के प्रति लगाव से तो उन्हें मोह नहीं ही था और साथ ही वे तरजीह के सवाल को भी उतना ही नापसन्द करते थे। ओरिजिन के प्रकाशन पर लेयल को लिखे खतों में उन्होंने अपने ऊपर खीझने का जिक्र किया और लिखा कि उन्हें खुद पर हैरानी है कि वे कई बरस की मेहनत पर मिस्टर पैलेस की पेशबन्दी पर निराशा को दबा नहीं पा रहे थे। इन खतों में उनकी साहित्यिक आकांक्षा और मान की भावना साफ तौर से सामने आयी है। यही नहीं, तरजीह के बारे में उनकी भावना उस तारीफ में सामने आयी है जो उन्होंने रीकलेक्शन में मिस्टर वैलेस के आत्म हनन के रूप में प्रकट की है।

अपने लेखन में संशोधनों के बारे में उनकी भावना बड़ी प्रबल थी और इसमें उनके लेखन पर हमलों के जवाब और सभी प्रकार की चर्चाएं भी शामिल थीं। फाल्कोनर (1863) को लिखे एक खत में उन्होंने इसका इशारा करते हुए लिखा : 'यदि तुम्हारे जैसे काबिल दोस्त पर मैं कभी गुस्सा उतारूं तो सबसे पहले मुझे अपने बारे में यही सोचना होगा कि मेरा दिमाग ठिकाने नहीं है। मेरे लेखन में तुमने जो संशोधन किए उनके लिए मुझे खेद है, और मैं मानता हूँ कि हर हाल में यह गलती ही है पर हम उसे दूसरों के लिए छोड़ें। अब चिढ़कर यह मैं खुद ही करने लगूँ तो बात अलग ही है।' यह भावना कुछ तो बहुत ज्यादा नज़ाकत की थी और कुछ इस प्रबल आकांक्षा की कि समय, शक्ति की बरबादी हुई सो हुई मन में गुस्सा अलग से पैदा हुआ।

लेयल ने जब उन्हें सलाह दी तो उस पर उन्होंने कहा कि वे भी तर्क वितर्क में पड़ना नहीं चाहते - लेयल ने यह सलाह अपने उन दोस्तों को दी थी जो उस समय एक दूसरे पर कीचड़ उछालने में लगे हुए थे।

यदि मेरे पिताजी के लेखकीय जीवन को समझना है तो उनकी सेहत की दशा को भी ध्यान में रखना होगा कि खराब सेहत के बावजूद वे लेखन में लगे रहे। अपनी बीमारियों को भी वे इतने शांत भाव से सहन करते थे कि उनकी संतानों को भी अहसास तक नहीं होने पाता था। संतानों के मामले में एक दुविधा और भी थी और वह यह कि हम बच्चों ने जब से होश संभाला था तो उन्हें बीमार ही पाया था - और इसके बावजूद उन्हें हमने हमेशा ही हंसता मुस्कराता और जीवट से भरपूर देखा था। इस तरह उनके बाद के जीवन में भी हम बच्चों के बचपन में उनकी दयालुता की जो छवि बनी थी वह कभी हट नहीं सकी, बावजूद इसके कि उनकी तकलीफों का एहसास हम सबको ज़राइसा भी नहीं हो पाता था। असलियत यह थी कि हमारी माँ के अलावा किसी को यह मालूम नहीं हो पाता था कि अपनी तकलीफों को सहन करने में उनकी ताकत गज़ब की थी। बाद के जीवन में तो माँ ने उन्हें एक रात के लिए भी अकेला नहीं छोड़ा और वे अपने सभी कामों की योजना कुछ इस तरह से बनाती थीं कि जो समय पिताजी के आराम का होता था, उस समय वे ज़रूर ही पास होती थीं। किसी भी तरह की घटना हो, वे पिताजी के सामने एक ढाल की तरह रहती थीं। उन्हें हर कठिनाई से बचातीं, या बहुत ज्यादा थकने से बचातीं या फिर ऐसी किसी भी गैर ज़रूरी, वाहियात किस्म की बात से दूर ही रखती थीं जो उनकी खराब सेहत में कुछ भी मुश्किल पैदा कर सकती थीं। मुझे ऐसी बात के बारे में कहते हुए संकोचइसा होता है कि किस प्रकार से उन्होंने पिताजी की निरन्तर सेवा-टहल में अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था, लेकिन मैं फिर भी यही कहूँगा कि अपने जीवन के लगभग चालीस बरस उन्होंने एक भी दिन ऐसा नहीं गुज़ारा जबकि वे बीमार न रहे हों। उनका सारा जीवन ही बीमारी से जूझते ही बीत गया। और इसी तरह अंत तक जीवन संघर्ष में लगे रहे। एक अदम्य ताकत उनमें थी कि वे इस सारे कष्ट को सहन करते रहे।



## चार्ल्स डार्विन का धर्म

मेरे पिता ने अपने प्रकाशित लेखों में धर्म के बारे में एक मौन ही साधे रखा। धर्म के बारे में उन्होंने जो थोड़ा-बहुत लिखा भी तो वह प्रकाशन के प्रयोजन से कभी नहीं।

मुझे लगता है कि कई कारणों से उन्होंने यह चुप्पी साधी थी। उनका मानना था कि इन्सान के लिए उसका धर्म निहायत ही व्यक्तिगत मसला होता है और इसकी चिन्ता भी उसके अपने लिए ही होती है। सन 1879 में लिखे एक खत में उन्होंने इसी बात की ओर इशारा किया है :

‘मेरे जो अपने विचार हैं उनका किसी और के लिए वैसे तो कोई मतलब नहीं है। लेकिन आपने पूछा ही है तो मैं यह कह सकता हूँ कि मेरा दिमाग भी अस्थिर ही रहता है। --- अपनी अस्थिरता की चरम अवस्था में मैं कभी भी नास्तिक नहीं हूँ, नास्तिक भी केवल एक ही अर्थ में जो ईश्वर के अस्तित्व में यकीन नहीं करता। मैं आम तौर पर ऐसा ही सोचता हूँ (और अब उम्र भी तो बढ़ती जा रही है) लेकिन हमेशा नहीं, शायद मेरे दिमाग के लिए सबसे ज्यादा सही जुमला होगा इसदेहवादी।

धार्मिक मामलों में वे दूसरों की भावनाओं को चोट पहुँचाने से दूर ही रहते थे, और उन पर इस चैतन्यता का भी प्रभाव था कि किसी इंसान को ऐसे विषय पर नहीं लिखना चाहिए जिसके बारे में उसने कभी खास तौर पर चिन्तन मनन नहीं किया हो। और यही नहीं, इस चेतावनी को उन्होंने धार्मिक मामलों पर विचार व्यक्त करते हुए अपने ऊपर लागू किया जैसा कि उन्होंने कैम्ब्रिज, यू एस के सेन्ट एफ.ई. ऐबट को लिखे खत में स्पष्ट किया था (सितम्बर 6, 1871)। खत में सबसे पहले उन्होंने यह बताया कि खराब सेहत के कारण वे मानव मन को प्रभावित करने वाले इस गहन, गम्भीर विषय पर उतना गहन, गम्भीर चिन्तन नहीं कर पाए जितना करना चाहिए। आगे वे यही कहते हैं कि - पहले लिखे हुए लेखों की विषयवस्तु को मैं पूरी तरह विस्मृत कर चुका हूँ। मुझे बहुत से खत लिखने हैं, और इन सब पर मैं प्रतिक्रिया कर सकता हूँ लेकिन सोचकर लिखना बहुत कम हो पाता है, फिर भी मुझे पूरी तरह से मालूम है कि मैंने ऐसा कोई शब्द नहीं लिखा है, जो मैंने सोच समझकर नहीं लिखा हो, लेकिन मैं समझता हूँ कि आप मुझसे असहमत भी नहीं होंगे कि जो कुछ भी आम लोगों के सामने छप कर जाना हो, उसका महत्त्व भी बड़ी ही परिपक्वता से तय करके सावधानी से प्रस्तुत करना चाहिए। मुझे यह कभी भी ध्यान में नहीं आया कि आप मेरे लेख में से कुछ सारांश निकालकर छापेंगे, यदि मुझे कभी यह अहसास हुआ होता तो मैं उनकी नकल रखता। मैं अपने ऐसे लेख पर आदतन निजी लिख दिया करता हूँ। हो सकता है जल्दबाजी में लिखे हुए मेरे किसी लेख में से यह अंश लिया गया है, और यह भी हो सकता है कि वह लेख छपने लायक रहा ही नहीं हो, या किसी अन्य प्रकार से आपत्तिजनक रहा हो। यह तो मानना निहायत ही बेहूदगी होगा कि मैंने जो लेख आपके पहले लिखे थे आप उन सब को मुझे लौटाएं, और जो आप उसमें से छापना चाहते हैं, उस पर निशान भी लगा दें, लेकिन यदि आप ऐसा करना चाहते हैं तो मैं फौरन यही कहूँगा कि मैं ऐसा एतराज क्योंकर करूँ। कुछ हद तक मैं धार्मिक विषयों पर अपने विचार खुलेआम जाहिर करने का इच्छुक नहीं हूँ क्योंकि मुझे नहीं लगता कि इस प्रकार के प्रचार को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए मैंने गहराई से चिन्तन मनन किया है।

डॉ. ऐबट को लिखे एक खत में (16 नवम्बर 1871) में मेरे पिता ने अपनी ओर से उन सभी कारणों को गिना दिया है कि वे धार्मिक और नैतिक विषयों पर लिखने में खुद को सक्षम क्यों नहीं महसूस करते।

‘मैं पूरी सच्चाई के साथ कह सकता हूँ कि इन्डेक्स में योगदान करने के लिए आपके अनुरोध से मेरा सम्मान बढ़ा है, और जो ड्राफ्ट आपने भेजा उसके लिए मैं अहसानमंद भी हूँ। मैं पूरी तरह से इस बात पर भी मुहर लगाता हूँ कि यह हर एक का कर्तव्य है कि जिस सत्य को वह मानता है उसका प्रसार भी करे; और ऐसा करने के लिए मैं आपका पूरे उत्साह और निष्ठापूर्वक आदर करता हूँ। लेकिन मैं आपके अनुरोध को पूरा करने में स्वयं को असमर्थ पाता हूँ जिसके कारण मैंने आगे चलकर बताया है, और इन कारणों को इतने ब्यौरों के साथ बताने के लिए आप मुझे माफ करेंगे, और आपकी नज़रों में इतना गुस्ताख होने के लिए मुझे खेद है। मेरी सेहत गिरीड़गिरी रहती है; 24 घंटे में शायद ही ऐसा कोई समय होता होगा जो मैं आराम से निकाल पाता हूँ, शायद आराम के समय में कुछ और सोच सकूँ। यही नहीं, लगातार दो माह का समय मैं गंवा चुका हूँ। इस बेइन्तहा कमज़ोरी और सिर में भारीपन के चलते अब ऐसे नए विषयों पर सोचना बहुत कठिन है। इन विषयों पर गहराई से विचार करना ज़रूरी है, और मैं तो अपने पुराने विषयों पर ही सहज महसूस करता हूँ। मैं कभी भी बहुत तेज़ विचारक या लेखक नहीं रहा हूँ। विज्ञान में मैंने जो कुछ किया है उसके लिए एक ही वजह है कि मैंने इन विषयों पर लम्बे समय तक चिन्तन, अध्यवसाय और मेहनत की है।

‘‘मैंने विज्ञान के संदर्भ में या समाज के परिपेक्ष्य में नैतिकता के बारे में सूत्रबद्ध रूप से कभी नहीं सोचा, और ऐसे विषयों पर अपनी दिमागी ताकत को लम्बे समय तक मैं लगा नहीं पा रहा हूँ, तो ऐसे में ऐसा कुछ नहीं लिख पाऊँगा जो इन्डेक्स में भेजने लायक हो।’’

उनसे एक नहीं बल्कि कई बार धर्म पर विचार प्रकट करने के लिए कहा गया, और उन्होंने अपने विचार प्रकट भी किए लेकिन यह काम उन्होंने अपने व्यक्तिगत खतों में ही किया। अपने एक डच विद्यार्थी के खत का जवाब देते हुए उन्होंने लिखा था (2 अप्रैल 1873), ‘मुझे भरोसा है कि इतना लम्बा खत लिखने के लिए तुम बुरा नहीं मानोगे, खासकर यह बात जान कर कि मेरी तबीयत काफी समय से खराब चल रही है और इस समय घर से दूर रहकर आराम कर रहा हूँ।

‘‘तुम्हारे सवाल का थोड़े में जवाब दे पाना संभव नहीं, और मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं कुछ लिख पाऊँगा। लेकिन इतना तो कह ही सकता हूँ कि हमारी चेतना इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि यह महान और आश्चर्यजनक ब्रह्मांड संयोगवश बन गया, और इसी प्रमुख तर्क के आधार पर ईश्वर का अस्तित्व कायम है, लेकिन यह तर्क वाकई में कोई मूल्य रखता है, मैं इस बारे में कभी भी निर्णय नहीं ले सका। मैं जानता हूँ कि यदि हम प्रथम कारण को स्वीकार कर लेंगे तो मन में पुनः यह सवाल पैदा होंगे कि यह कब हुआ, और कैसे इसका विकास हुआ। संसार में कष्टों और व्याधाओं की जो भरमार है, उसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती है। जो लोग पूरी तरह से ईश्वर में विश्वास करते हैं, उन योग्य लोगों के विवेक पर भी मुझे कुछ हद तक भरोसा नहीं है, लेकिन इस तर्क का खोखलापन भी मुझे मालूम है। मुझे सबसे सुरक्षित नतीजा यही लगता है कि यह सारा विषय ही मानव की प्रज्ञा के दायरे में नहीं आता। इन्सान तो बस अपना कर्म कर सकता है।’’

इसी तरह से एक बार सन 1879 में अपने एक जर्मन विद्यार्थी के सवालों का जवाब देते हुए उन्होंने यही सब लिखा था। खत का जवाब पिताजी के पारिवारिक सदस्य ने लिखा था :

‘‘मि. डार्विन ने मुझसे यह कहने का अनुरोध किया है कि उन्हें इतने खत मिलते हैं, जिनमें से सब का जवाब दे सकना कठिन है।

“वे मानते हैं कि उद्द्विकास का सिद्धान्त ईश्वर में विश्वास के साथ तुलनीय है; लेकिन तुम्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि ईश्वर का अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग ही है।

इससे जर्मन युवक को संतोष नहीं हुआ और उसने फिर से मेरे पिता को लिखा और उसे इस प्रकार का जवाब दिया गया:-

“मैं एक बूढ़ा और बीमार व्यक्ति पहले ही बहुत से कामों को पूरा करने में लगा हुआ हूँ, और मेरे पास इतना समय नहीं है कि तुम्हारे सवालों का पूरा पूरा जवाब दे सकूँ। और इनका पूरा जवाब दे सकना संभव भी नहीं है। विज्ञान को क्राइस्ट के अस्तित्व से कुछ भी लेना-देना नहीं है, सिवाय इसके कि वैज्ञानिक अनुसंधान की आदत के कारण व्यक्ति प्रमाणों को स्वीकार करने के मामले में सजग रहता है। मेरा अपना मानना है कि कभी कोई अवतार नहीं हुआ। और भविष्य के जीवन में हर इन्सान को झूठी संभावनाओं के बीच आपसी विरोधाभासों को खुद ही देखना और समझना होगा।

आगामी अनुच्छेदों में उनकी आत्मकथा से कुछ अंश दिए गये हैं। ये उन्होंने 1876 में लिखे थे। इनमें मेरे पिता ने धार्मिक दृष्टिकोणों का इतिहास बताया है:

अक्टूबर 1836 से लेकर जनवरी 1839 तक दो वर्ष के दौरान मुझे धर्म के बारे में सोचने के लिए प्रेरणा मिली। बीगेल से समुद्र यात्रा पर जाने तक मैं पूरी तरह से लकीर का फकीर था, और मुझे याद है कि नैतिकता के कुछ सवालों के जवाब में प्रमाण देते हुए बाइबल से कुछ उदाहरण देने पर जहाज के अफसर (हालांकि वे भी लकीर के फकीर ही थे) मेरी हँसी उड़ाते थे। मुझे लगता है कि तर्क प्रस्तुत करने की नवीनता उन्हें चकित कर देती थी। लेकिन इस समय अर्थात् 1836 से 1839 के दौरान मुझे मालूम होने लगा था कि ओल्ड टेस्टामेन्ट पर भी उतना ही भरोसा किया जा सकता है, जितना कि हिन्दुओं की धार्मिक पोथियों पर। इसके बाद मेरा यह सवाल कभी भी खतम नहीं हुआ - क्या यह बात यकीन के लायक है कि यदि ईश्वर को हिन्दुओं में अवतार लेना ही था तो वह विष्णु, शिव आदि में विश्वास से ही जोड़कर देखा जाना चाहिए, ठीक उसी तरह जैसे कि ईसाईयत को ओल्ड टेस्टामेन्ट से जोड़ दिया जाता है। यह मुझे पूरी तरह से अविश्वसनीय लगता है।

“आगे यह भी दिखाया जा सकता है कि जिन चमत्कारों से ईसाईयत का समर्थन किया जाता है, उनमें किसी भी समझदार व्यक्ति को भरोसा करने के लिए स्पष्टतया कुछ तो प्रमाण चाहिए - और यह भी कि जैसे-जैसे हम कुदरत के निर्धारित नियमों के बारे में जानकारी प्राप्त करते जाते हैं, उतना ही अविश्वास चमत्कारों पर होने लगता है। उस समय इन्सान इतनी हद तक अनजान और भोला था कि आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यह भी कि गोस्पेल के बारे में यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि घटनाओं की आवृत्ति के साथ ही इन्हें लिखने का काम भी कर दिया गया था। इनमें बहुत से महत्वपूर्ण विवरणों में अन्तर है, मुझे लगता है कि यह कम महत्वपूर्ण नहीं कि इन्हें प्रत्यक्षदर्शियों की सामान्य गलतियाँ मान लिया जाए। इन्हीं सब प्रतिबिम्बों के कारण मैं इन्हें कोई नावेल्टी या मूल्यवत्ता प्रदान नहीं करता, लेकिन जैसे-जैसे इन विरोधाभासों का मुझ पर प्रभाव पड़ता गया, वैसे-वैसे दैवी अवतार के रूप में ईसाईयत के प्रादुर्भाव पर मेरा अविश्वास भी बढ़ता गया। सच तो यह है कि धरती के विशाल भू-भाग पर बहुत से मिथ्या धर्मों का प्रसार ठीक उसी तरह से हुआ है जैसे जंगल में आग फैलती है, और मुझे इसी पर पूरा यकीन है।

“लेकिन मैं अपने भरोसे को टूटने नहीं देना चाहता था, मैं इसके बारे में तो आश्वस्त था, क्योंकि प्रसिद्ध रोमनों के बीच हुए पुराने खतों के सूत्र तलाशते हुए और पोम्पेई या दूसरी किसी जगह से मिली पांडुलिपियों में दिवा स्वप्न देखते हुए बहुत ही मनोहर तरीके से वही सब बताया गया है जो गोस्पेल में लिखा हुआ है। लेकिन अपनी कल्पना को खुली छूट देने के बाद मेरे लिए यह कठिन से कठिनतर होता गया और मैं ऐसे प्रमाणों को तलाशने लगा जो मुझे प्रभावित कर सकें। इस तरह मुझ पर अविश्वास की धुंध गहराती चली गयी। हालांकि इसकी गति बहुत धीमी थी, लेकिन आखिरकार इसने मुझे पूरी तरह से ढंक ही लिया। एक बात ज़रूर कहूँगा कि इसकी गति इतनी धीमी थी कि मुझे कोई खास तकलीफ नहीं हुई।

“हालांकि अपने जीवन में काफी बाद तक भी मैंने किसी भी साकार ब्रह्म की मौजूदगी के बारे में नहीं सोचा, लेकिन मैं यहाँ कुछ मिथ्या निष्कर्ष प्रस्तुत करूँगा, जो कि मैंने अपने जीवन में निकाले। पाले ने प्रकृति में रूपरेखा के बारे में जो पुराना तर्क दिया था, और जो मुझे भी काफी निष्कर्षपरक लगा था, यहाँ विफल हो गया, क्योंकि अब प्राकृतिक चयन का सिद्धान्त खोजा जा चुका है। उदाहरण के लिए अब हम और ज्यादा समय तक यह तर्क नहीं दे सकते कि सीपियों के सुन्दर कपाटों को किसी बुद्धिमान शक्ति ने ठीक उसी तरह से बनाया होगा जिस तरह से इंसान द्वारा दरवाजों के कपाट बनाए जाते हैं। जीव-जगत में रूपरेखा में और प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया में कोई अदला-बदली प्रतीत नहीं होती है, और उससे अधिक तो बिल्कुल नहीं कि हवा किस दिशा में बह रही है। मैंने वैरिएशन ऑफ डोमिस्टिकेटेड एनिमल्स एन्ड प्लान्ट्स के अन्त में इस विषय पर विचार किया है, और मैं देखता हूँ कि उसमें दिए गए सवालों के अभी तक जवाब नहीं मिले हैं।

“लेकिन जिन अंतहीन सुन्दर संकल्पनाओं को हम हर जगह देखते रहते हैं, उनके बारे में यह तो पूछा ही जा सकता है कि संसार के इस आम तौर पर लाभदायक रूप का श्रेय किसे दिया जाए? कुछ लेखक संसार में दुखों की मात्रा से इतने पीड़ित हो जाते हैं कि यदि सभी चेतन तत्त्वों को देखें तो वे यह शंका करने लगते हैं कि अधिकता दुखों की है या सुखों की।

मेरे विचार से सुख भी काफी है, हालांकि यह सिद्ध करना कठिन है। यदि इस निष्कर्ष के सत्य को ले लिया जाए तो यह उन्हीं तत्त्वों के साथ सुसंगत हो जाता है जो हम प्राकृतिक चयन से अपेक्षा करते हैं। यदि किसी प्रजाति के सभी सदस्यों को चरम सीमा तक दुख उठाना पड़े तो वे अपने अस्तित्व से ही इन्कार करने लगेंगे, लेकिन हमारे पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ऐसा कभी भी या यदा-कदा हुआ होगा। इसके अलावा कुछ अन्य विचारधाराओं में यह विश्वास प्रधान है कि सभी चेतन तत्त्वों को सामान्यतया सुखानुभव के लिए सृजित किया गया है।

"हर व्यक्ति जो मेरी ही तरह यह विश्वास करता है कि सभी प्राणियों को सभी दैहिक और मानसिक अंगों (उन इन्द्रियों के अलावा जो उनके अधिष्ठाता के लिए न तो लाभप्रद हैं और न ही लाभकारी) का विकास प्राकृतिक चयन के माध्यम से हुआ है, या श्रेष्ठतम ही जीवन यापन करेगा। जो जीता वही सिकंदर। इन सब के साथ ही अंगों का प्रयोग या आदतें भी शामिल होती हैं, जिनके आधार पर इन अंगों का गठन हुआ है, ताकि इन अंगों वाले प्राणी अन्य जीवों के साथ सफलतापूर्वक स्पर्धा कर सकें और इस प्रकार अपनी तादाद बढ़ा सकें। अब देखो, प्राणि मात्र तो उस संक्रिया की तरफ बढ़ते हैं जो उनकी प्रजाति के लिए सर्वाधिक लाभदायक होती है। यह संक्रिया पीड़ा, भूख, प्यास और डर जैसी व्यथाओं या खाने-पीने जैसी आनन्ददायक घटनाओं और प्रजाति विशेष के उत्थान को

प्रेरित करती हैं; यह फिर व्यथा और आनन्द दोनों का संयुक्त रूप सामने आता है जैसे कि भोजन की तलाश करना। लेकिन किसी भी प्रकार की पीड़ा या व्यथा लम्बी अवधि तक बरकरार रहे तो वह अवसाद पैदा करती है और प्रक्रिया शक्ति को कम कर देती है, हालांकि यह भी उस जीव को किसी बड़ी या आकस्मिक विपत्ति से बचाने के लिए ही होता है। दूसरी ओर आनन्ददायक अनुभूतियाँ अवसाद को जन्म दिए बिना ही लम्बे समय तक कायम रह सकती हैं और यही नहीं बल्कि सारी जीवन प्रणाली की सक्रियता को बढ़ा देती हैं। वैसे तो यह मालूम ही है कि सभी या अधिकांश चेतन जीवों का विकास इस रूप में हुआ है कि उसका माध्यम प्राकृतिक चयन ही है, और आनन्द की अनुभूतियाँ उनकी आदतों की ओर इशारा करती हैं। हम देखते हैं कि अपने आप को झोंक देने से भी आनन्द प्राप्त होता है। बहुधा यह अर्पण शारीरिक या मानसिक रूप से हो सकता है इ जैसे हम अपने दैनिक भोजन से जो आनन्द प्राप्त करते हैं, और कई बार जो आनन्द हम सामाजिकता और अपने परिवार जनों के लिए प्रेम से प्राप्त करते हैं। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि बार-बार या आदतन होने वाले आनन्द की गुणीभूत मात्रा अधिकांश चेतन प्राणियों को दुखों पर सुख की छाया प्रदान करती है, हालांकि कुछ प्राणी दुख ज्यादा भी उठाते हैं। इस प्रकार का दुख भोग पूरी तरह से प्राकृतिक चयन के विश्वास के साथ तुलनीय है, जो कि अपनी सक्रियता में दक्ष नहीं है, लेकिन इसकी प्रवृत्ति यही रहती है कि अन्य प्रजातियों के साथ जीवन संघर्ष की राह में हरेक प्रजाति को यथासंभव सफल बनाए, और यह समस्त क्रिया व्यापार सुन्दरता से लबालब भरे और हर समय बदलते रहने वाले परिवेश में होता है।

“संसार अपने आप में दुखों का विशाल पर्वत है और इस पर कोई विवाद नहीं। कुछ विचारकों ने इस तथ्य की व्याख्या मानव मात्र के बारे में करने का प्रयास किया है, और यह कल्पना की है कि वह अपने नैतिक विकास के लिए संसार में आया है। लेकिन संसार में मानव की संख्या की तुलना अन्य जीवों के साथ नहीं की जा सकती और नैतिक विकास के बिना वे दुख भी उठाते हैं। मुझे लगता है कि बुद्धिमत्तापूर्ण प्रथम कारण की मौजूदगी की तुलना में दुखों की मौजूदगी का यह प्राचीन तर्क बहुत ही मजबूत है, जबकि जैसा कि अभी बताया गया है, बहुत ज्यादा दुखों की मौजूदगी का साम्य इस दृष्टिकोण से अधिक है कि सभी जीवों का विकास विभंजन और प्राकृतिक चयन के माध्यम से हुआ है।

“आज के युग में बुद्धिमान ईश्वर की मौजूदगी के सबसे सरल तर्क का जन्म ज्यादातर लोगों के भीतरी अनुभवों और संकल्पनाओं के आधार पर हुआ है।

“इससे पहले मैं इसी अनुभव से प्रेरित था (हालांकि मैं नहीं समझता कि मुझमें कभी भी धार्मिक भावनाओं का प्रबल विकास हुआ), और मैं भी ईश्वर की मौजूदगी तथा आत्मा की अनश्वरता की ओर बढ़ा। अपने जर्नल में मैंने लिखा था कि ब्राजील के घने वनों की विशालता और विराटता के बीच खड़े होकर मैं यही विचार कर रहा था, ‘अचरज, श्रद्धा और समर्पण की ऊँची भावना को पर्याप्त विचार दे पाना संभव नहीं है, जो कि इस समय मेरे मन को आन्दोलित कर रही हैं, मैं अपनी इस संकल्पना को याद रखूँगा कि मानव में इस श्वास-प्रश्वास के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है; लेकिन अब महानतम दृश्य भी मेरे मन में इस प्रकार की संकल्पनाओं को लेशमात्र भी अवकाश नहीं देगा। यह सत्य ही है कि मैं एक वर्णान्ध मनुष्य की तरह हूँ और लाली की मौजूदगी के बारे में मानव का विश्वास मेरी वर्तमान हानि को दुरुस्त करने के लिए कुछ भी सुबूत जुटा नहीं पाती है। यह तर्क तो एक मान्य तर्क तभी बन सकेगा जब सभी प्रजातियों के सभी लोग ईश्वर की मौजूदगी के बारे में एक जैसी संकल्पना रखते हों; लेकिन हम जानते हैं कि यह असलियत से बहुत दूर है। इसलिए मैं यह नहीं देख पा रहा हूँ कि इस तरह की

अन्दरूनी संकल्पनाओं और भावनाओं के बलबूते पर यह प्रमाण नहीं दिया जा सकता है कि वास्तव में क्या प्राप्त है। इन विराट दृश्यों को देखने के बाद शुरू में मेरे दिलो-दिमाग में जो कुछ जागा, और जो कि ईश्वर के लिए गहरे विश्वास से जुड़ा हुआ है, यही नहीं बल्कि यह सब कुछ अलौकिकता की भावना से अलग नहीं था, और इस सबके बाद इस भावना के पैदा होने और बढ़ते रहने को समझाना कठिन है। ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए इस तर्क को ज्यादा आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। यह तो संगीत सुनने के बाद पैदा हुई ताकतवर लेकिन डांवाडोल सोच से ज्यादा बड़ी बात नहीं है।

अब आते हैं अनश्वरता की बात पर। मुझे कोई भी बात (इतनी) स्पष्ट नहीं लगती जो कि इस विश्वास और लगभग भीतरी भाव जैसी बात पर है कि ज्यादातर भौतिकशास्त्र यह मानते हैं कि समय बीतने के साथ ही सूर्य और इसके साथ के सभी ग्रह इतने ठंडे हो जाएंगे कि जीवन का नामो-निशान मिट जाएगा। हाँ, इतना ज़रूर हो सकता है कि कोई बड़ा पिंड आकर सूर्य से टकरा जाए और सूर्य फिर से ऊर्जावान हो उठे तो जीवन बचा रहेगा। मैं यह मानता हूँ कि मानव इस समय जितना दक्ष है, आगे चलकर उससे कहीं ज्यादा दक्ष बनेगा। इस विचार को भी नकारा नहीं जा सकता कि मानव और सभी जीव अपनी इस सतत प्रगति के अन्त में प्रलय का सामना ही करेंगे। जो यह मानते हैं कि आत्मा अजर अमर है उनके लिए संसार का विनाश ज्यादा डरावना नहीं होगा।

“ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने का एक और जरिया भी है जो कि भावनाओं से नहीं बल्कि कारण से जुड़ा है, और यह मुझ पर ज्यादा असर डालता है और इसमें कुछ वजन भी है। मानव में अपने अतीत में भी काफी पुरानी घटनाओं और कुछ हद तक भविष्य का अंदाजा लगाने की क्षमता है। इससे यह मानना कठिन या यूँ कहिए नामुमकिन सा हो जाता है कि यह विराट और सुन्दर ब्रह्मांड अचानक ही या किसी ज़रूरत से बन गया होगा। जब मैं इस तरह का विचार प्रकाट करता हूँ तो मैं जबरन प्रथम कारण की ओर झुकने को मजबूर हो जाता हूँ कि मैं भी मानव की ही भांति बुद्धिमान हूँ और यहाँ मैं आस्तिक कहलाना पसंद करूँगा। उस समय मेरे दिमाग में यही निष्कर्ष काफी मजबूती से पैर जमाये था, और जहाँ तक मुझे याद है उस समय मैंने दि ओरिजिन ऑफ स्पीसिज लिखी थी और तब से अब तक वह विचार भी काफी नरम हो चुका है। लेकिन यहीं पर संदेह पैदा होता है कि मानव का दिमाग क्या शुरू में एकदम तुच्छ जीवों जैसा रहा होगा जो विकसित होते-होते इस दशा में पहुँच गया है। मेरा मानना है कि किसी बड़े नतीजे पर पहुँचने के लिए इस बात को मानना होगा।

“इस गूढ़ से गूढ़ समस्या पर मैं जरा-सा भी बोलने या कहने का साहस नहीं जुटा सकता। सभी चीजों के जन्म का रहस्य हमारे लिए रहस्य ही है और ऐसे में हमें संदेहवादी ही रहना चाहिए।

जीवनी में जो कुछ सारांश के तौर पर लिखा गया है, कुछ हद तक वही बात आगे के खतों में दोहरायी गयी है। पहला खत जुलाई 1861 में मैकमिलन मैगजीन में दि बाउंड्रीज ऑफ साइंस : ए डायलॉग में प्रकाशित हुआ था।

### चार्ल्स डार्विन की ओर से मिस जूलिया वेजवुड को, 11 जुलाई 1861

किसी ने मुझे मैकमिलन का अंक भेजा है, और मैं आपको यह ज़रूर बताना चाहूँगा कि मैं आपके लेख की प्रशंसा करता हूँ, हालांकि साथ ही साथ मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि कुछ अंशों को मैं समझ नहीं सका, और शायद लेख के वही अंश खास अहमियत रखते हों, और इसका कारण यही है कि मेरे दिमागी घोड़ों को तत्त्वज्ञान की भारी गाड़ी खींचने की आदत नहीं है। मैं समझता हूँ कि आपने दि ओरिजिन ऑफ स्पीसिज को अच्छी तरह से

समझ लिया होगा, हालांकि मेरे आलोचकों के लिए ऐसा कर पाना टेढ़ी खीर ही है। आखिरी पेज पर लिखे विचार कई बार मेरे दिमाग में बेतरतीबी से आए। बहुत सारे खतों का जवाब लिखने में लगा रहा और आपके द्वारा उठाए गए खासुलखास मुद्दों पर सोचने का तो समय ही नहीं मिला या यूँ कहिए कि सोचने का प्रयास भी नहीं कर पाया। लेकिन मैं जिस नतीजे पर पहुँचा वह हक्का-बक्का कर देने वाला रहा - कुछ ऐसा ही जो शैतान के जन्म के बारे में सोचने लगा, और आपने भी तो इसी तरफ इशारा किया है। यह दिमाग इस ब्रह्मांड की ओर देखने से भी इंकार करता है, कि इसकी रचना तो सोच समझ कर की गयी है, तो भी हम इसमें रूपरेखा की आशा करते हैं, जैसे सभी जीवों की बनावट में, लेकिन इस बारे में मैं जितना सोचता हूँ, मुझे कला कौशल में दैवत्व उतना ही कम मिलता है। ऐसा ग्रे और कुछ दूसरे विद्वानों ने प्रत्येक बदलाव तो नहीं लेकिन कम-से-कम हरेक लाभदायक बदलाव के लिए कहा है कि इसकी रचना सोच-समझ कर दैविक रूप से हुई है (ऐसा ग्रे ने इसकी तुलना बरसात की बूंदों से की है जो सागर पर नहीं बल्कि धरती पर गिरकर उसे उपजाऊ बनाती हैं)। इस बारे में जब मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या उन्होंने पहाड़ी कबूतर के बदलावों पर गौर किया है - जिसे पाल पोस कर इंसान ने ही लोटन कबूतर बनाया, क्या इसकी रचना भी दैविक रूप से इंसान के मनोरंजन के लिए हुई, तो उनके पास कोई जवाब नहीं। वे या कोई दूसरा यदि यह स्वीकार कर लें कि ये बदलाव प्रयोजन को देखते हुए बस संयोगवश हा (दरअसल अगर उनकी उत्पत्ति को देखा जाए तो वह संयोगवश नहीं है) तो मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हुदहुद या कठफोड़वे की रचना दैविक रूप से होने के बदलाव को वे क्यों नहीं देखते हैं। कारण यही है कि यह सोचना आसान है कि लोटन कबूतर या पंखदार पूँछ वाले कबूतर की दुम उस पखेरू के लिए भी कुछ उपयोगी होगी, खासकर उस प्राकृतिक हालात में जो जीवन की आदतों को बदलती रहती है। इस रचना के बारे में इन सब विचारों के कारण मुझे काठ मार जाता है, पर क्या आप इस तरफ कुछ ध्यान देंगे। मुझे तो नहीं पता।

परिरूप के बारे में उन्होंने डॉ. गे को लिखा (जुलाई 1860):

“परिरूपित विधि और गैर ज़रूरी नतीजे के बारे में मैं कुछ और भी कहना चाहता हूँ। मान लीजिए मैंने एक चिड़िया देखी और मेरे मन में उसे खाने की इच्छा पैदा हुई, मैंने बन्दूक उठायी और चिड़िया को मार गिराया, यह सब मैंने सोच-समझ कर किया। अब यह भी देखिए कि एक बेचारा भला आदमी पेड़ के नीचे खड़ा है और अचानक ही आकाश से बिजली गिरती है और उस आदमी का काम तमाम हो जाता है। क्या आप मानेंगे (और इस बारे में मैं आपसे जवाब ज़रूर चाहूँगा) कि ईश्वर ने उस आदमी को मारने के लिए रूपरेखा तैयार की होगी? बहुत से या ज्यादातर लोग इस बात को स्वीकार कर लेंगे, लेकिन मैं कर नहीं सकता और करता भी नहीं। यदि आप मानते हैं तो क्या आप यह भी मानेंगे कि जब एक अबाबील किसी मच्छर को पकड़ता है, तो क्या ईश्वर ने यह रूपरेखा बनायी होगी कि कोई खास अबाबील ही किसी खास मच्छर पर झपटे और वह भी ठीक उसी खास मौके पर? मैं मानता हूँ कि वह आदमी और यह मच्छर दोनों ही एक समान संकट या कष्ट की हालत में हैं। यदि उस आदमी या इस मच्छर की मौत की रूपरेखा नहीं बनायी गयी है तो फिर मैं इस बात को मानने में कोई औचित्य नहीं देखता कि उन दोनों ही का पहला जन्म या उत्पत्ति अनिवार्य रूप से रूपरेखा बनाकर की गयी होगी।

चार्ल्स डार्विन की ओर से डब्ल्यू. ग्राहम को लिखा गया खत (डाउन, 3 जुलाई 1881)

महोदय

आप मेरी इस गुस्ताखी को माफ करेंगे कि मैं आपकी काबिले-तारीफ पुस्तक क्रीड ऑफ साइंस को पढ़ने के बाद आपको धन्यवाद कर रहा हूँ। दरअसल इस किताब ने मुझे असीम आनन्द दिया। हालांकि अभी मैंने इस किताब को पढ़ कर खतम नहीं कर पाया हूँ। कारण इसका यही है कि अब बुढ़ापे में बहुत धीरे-धीरे पढ़ पाता हूँ। बहुत दिन के बाद मैं किसी किताब में इतनी रुचि ले पाया हूँ। जाहिर है कि इस काम में आपको कई बरस जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ी होगी और इस काम को काफी समय भी देना पड़ा होगा। आप हरेक से तो यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह आप से पूरी तरह से सहमत हो खासकर इस प्रकार के अनजान विषय के बारे में, यही नहीं, आपकी किताब में कुछ ऐसे तथ्य भी हैं, जिन्हें मैं हजम नहीं कर पा रहा हूँ। इसमें सबसे पहली बात तो यही है कि इस तथाकथित प्राकृतिक कानून में भी कुछ प्रयोजन छुपा हुआ है। मैं तो यह नहीं समझ सकता। यह कहने के लिए तो गुंजाइश नहीं बचती कि बहुत से लोग यह आशा रखते हैं कि एक दिन ऐसा आएगा कि सभी बड़े-बड़े नियम अनिवार्य रूप से किसी एक ही नियम के पीछे चल रहे होंगे। अब इन नियमों को भी देखिए जिन पर हम बात कर रहे हैं। जरा चाँद की ओर देखिए वहाँ पहुँच कर गुरुत्व का नियम कहाँ चला जाता है - और ऊर्जा को बचाने के बारे में क्या कहेंगे - जब परमाणु शक्ति का सिद्धान्त या ऐसे ही अन्य नियम हों जो कि सत्य तो हैं ही। क्या इसमें भी कोई प्रयोजन हो सकता है कि चाँद पर भी कोई ऐसा निम्नकोटि का जीव हो जो अकल से भी पैदल हो। लेकिन मुझे इस तरह धूल में लठ चलाने का अनुभव नहीं है, और ऐसे में मैं तो भटक ही जाता हूँ। यह ब्रह्मांड महज संयोग का परिणाम नहीं है -यह मेरे दिल की बात थी, और कुल मिलाकर देखूँ तो आपने यह इतने रोचक ढंग और साफ तौर पर कही है कि शायद मैं भी न कह पाता। लेकिन ऐसे में यह भयानक संदेह फिर भी घेरे रहता है कि मानव का दिमाग जो कि निम्नतर जीवों के दिमाग से विकसित हुआ है, उसका कुछ भी मूल्य है या यह ज़रा भी यकीन करने लायक है। क्या कोई भी किसी बन्दर के दिमाग में आयी संकल्पनाओं पर भरोसा करेगा, या फिर ऐसे दिमाग में किसी प्रकार की संकल्पना आयी भी होगी। दूसरे में सोचता हूँ कि आपने हमारे महानतम लोगों को जो व्यापक महत्त्व दिया है तो मैं इस पर कुछ केस बनाऊँ, मैं तो दूसरे, तीसरे और चौथे स्थान पर चल रहे लोगों को भी खासुल-खास समझता हूँ और विज्ञान के मामले में तो खासकर। और आखिर में मैं यही कहना चाहूँगा कि मानव सभ्यता की प्रगति के लिए प्राकृतिक चयन ने बहुत कुछ किया है और कर रहा है, लेकिन आप इसे स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, और इस पर तो मैं बहस करने को तैयार हूँ। जरा ध्यान दीजिए कि यह कोई सदियों पुरानी बात नहीं है जब यूरोप के देशों में तुर्क लोगों के आक्रमण का कितना भय लगा रहता था, और अब यही विचार कितना मज़ाकिया लगने लगा है। तथाकथित सभ्य काकेशियन प्रजातियों ने अपना अस्तित्व बचाने के लिए तुर्क हमले का मुँहतोड़ जवाब दिया। सारे संसार को देख लीजिए और इसके लिए वह दिन दूर नहीं जब अनगिनत निम्न प्रजातियों को उच्चवर्गीय सभ्य प्रजातियों द्वारा तबाह कर दिया जाएगा। लेकिन अब मैं और नहीं लिखूँगा और आपके लेख की उन बातों का जिक्र भी नहीं करूँगा जिनसे मैं बहुत प्रभावित हुआ। वैसे तो मुझे आपसे इस गुस्ताखी के लिए माफी माँगनी चाहिए कि मैंने अपने विचारों से आपको परेशान किया, और इसका एकमात्र बहाना मेरे पास यही है कि आपकी किताब ने मेरे मन में तूफान खड़ा कर दिया।

मान्यवर,

मैं तो हमेशा ही आपका अनुग्रही और दासानुदास बन कर रहना चाहता हूँ।

डार्विन ने इन विषयों पर बहुत कम ही जुबान खोली और मैं उनकी बातचीत के हिस्सों से भी कोई बहुत याद नहीं कर पा रहा हूँ, जिनसे यह ज्ञात हो सके कि धर्म के प्रति उनकी क्या भावना थी। उनके विचारों के बारे में हो सकता



है कि उनके खतों में छिटपुट कुछ अभिमत मिल जाएँ।

**अनुवाद एवं प्रस्तुति: [सूरज प्रकाश](#) और [के पी तिवारी](#)**

चार्ल्स डार्विन की प्रकाशित पुस्तकें

- 1836: ए लैटर, मोरल स्टेट ऑफ ताहिती, न्यूजीलैंड,
- 1839: जरनल एंड रिमार्कस (वोयेज ऑफ बीगल)
- जूलॉजी और वोयेज ऑन बीगल:

1840: भाग I. फासिल ममलिया,

1839: भाग II. ममलिया,

- 1842: द स्ट्रक्चर एंड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ कोरल रीफ्स
- 1844: जिओलोजिकल आबजर्वेशन ऑफ वालकनिक आइलैंड्स
- 1846: जिओलोजिकल आबजर्वेशन ऑन साउथ अमेरिका
- 1849: जिआलोजी फ्राम ए मैनुअल ऑफ साइंटिफिक इन्क्वायरी;
- 1851: ए मोनोग्राफ ऑफ सब क्लास सिरीपिडिया, विद फीगर्स आफ आल स्पेशीज.
- 1851: ए मोनोग्राफ ऑन द फासिल लेपाडिडी
- 1854: ए मोनोग्राफ आफ द सब क्लास सिरीपिडिया
- 1854: ए मोनोग्राफ ऑन द फासिल बानानिड एंड वेरुसिड ऑफ द ग्रेट ब्रिटेन
- 1858: ऑन द परपेचुएशन ऑफ वेराइटीज एंड स्पेशीज बाय नेचुरल मीन्स आफ सेलेक्शन
- 1859: ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पेशीज बाय मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन
- 1862: ऑन द वेरियस कन्ट्रीवेंसेस बाय विच ब्रिटिश एंड फारेन आर्चिड आर फ्रटिलाइज्ड बाय इन्सेक्ट्स
- 1868: वेरिएशन ऑफ प्लांट्स एंड एनिमल अंडर डोमेस्टिकेशन
- 1871: द डीसेंट ऑफ मैन
- 1872: द एक्सप्रेसन ऑफ इमोशंस इन मैन एंड एनिमल
- 1875: मूवमेंट एंड हैबिट्स ऑफ क्लाइंबिंग प्लांट्स
- 1875: इन्सेक्टिवोरस प्लांट्स
- 1876: द इफैक्ट ऑफ क्रास एंड सेल्फ फ्रटिलाइजेशन इन द वेजिटैबल किंगडम
- 1877: द डिफरेंट फार्म्स ऑफ द फ्लावर्स आन द प्लांट्स ऑफ द सेम स्पेशीज
- 1880: द पावर ऑफ द मूवमेंट इन प्लांट्स
- 1881: द फार्मेशन ऑफ वेजिटैबल मोल्ड थू एक्शन ऑफ वार्म्स
- 1887: चार्ल्स डार्विन की आत्म कथा (फ्रांसिस डार्विन द्वारा संपादित)
- इनके अलावा सैकड़ों की संख्या में आलेख और निबंध

[शीर्ष पर जाएँ](#)